मी शंकराचार्य

संस्थापक :—

स्वर्गीय पंडित ओङ्कारनाथ वाजपेयी



स्वामी शङ्कराचार्य।

ओंकार प्रेस, प्रयाग।

ओंकार-आदर्श-चरित-माला की २६ वीं पुस्तक

स्वामी शङ्कराचार्य जी

का

जीवन चरित

वैदिक धर्म के प्रधान संरक्षक

और

मोक्षमार्ग के प्रदर्शक

—:o:—

लेखक

पं० हरिमङ्गल मिश्र एम० ए०

—:o:—

सम्पादक :—

डा० रामप्रसाद त्रिपाठी एम० ए०

प्रकाशक :—

काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी एस० आर० बी०

अध्यक्ष

ओंकार प्रेस एवं ओङ्कार बुकडिपो प्रयाग

द्वितीयावृत्ति] [मूल्य ।=)

वक्तव्य

श्री स्वामी शङ्कराचार्य्य के जीवन चरित्र के लिखने वाले को अनेक कठिनाइयाँ उठाकर भी सन्तोष मिलना दुस्तर है। इनके चित्र को उपयुक्त और उचित पटल पर रखना इसलिये और भी कठिन है कि इनकी उत्पत्ति और मृत्यु का ठीक २ काल ही निर्णय होने नहीं पाता। लेखक महाशय ने तैलङ्ग और मौजूमदार आदि विद्वानों की सम्मति प्रकट करते हुये स्वयं स्वीकार कर लिया है कि "वास्तव में कहते नहीं बनता कि कौन सा मत ठीक है।" इस कथन को दृष्टि गोचर रख कर 'राज्य विभाग' नामक प्रकरण पर कहाँ तक विश्वास करना उचित है यह सहृदय पाठक गण स्वयं निश्चित कर लें।

यह जान पड़ता है कि लेखक महोदय ने टी० एस० नारायण शास्त्री का लिखा हुआ "Age of Shankar (शंकराचार्य का समय) नामक ग्रन्थ अवलोकन नहीं किया और यदि किया भी हो तो उसका उपयुक्त प्रयोग इस पुस्तक में उन्होंने करना उचित नहीं समझा। नारायण शास्त्री ने दश शङ्कर विजयों का अवलोकन करके श्री चित्सुखाचार्य के बृहच्छंकर दिग्विजय को सब से प्राचीन और माननीय कहा है और माधवाचार्य के संक्षिप्त शंकर विजय को सब से आधुनिक माना है। आप का कथन है कि शंकर विजयों के लेखकों में से कई ने 'आदि शंकर' और 'अभिनव शंकर' की जीवन घटनाओं को खिचड़ी कर डाला है जिससे कि आधुनिक विद्वान भ्रम में फँस गये। आपने बड़ी गवेषणा के उपरान्त यह निर्धारित किया है कि आदि शंकर का जन्म ईसा से ५०९ वर्ष पहिले हुआ! इस सिद्धान्त को स्थिर करने में आपने प्राचीन इतिहास और संवत्सरों की जो छान बीन की है वह चाहे सहसा कोई न माने तो

भी अवश्यमेव द्रष्टव्य और विचारणीय है। इस छोटी सी पुस्तक में ऐसे जटिल निरीक्षणों का सतर्क समावेश न करके लेखक महाशय ने पाठकों को ऐतिहासिक समस्याओं के गर्तावर्त में चक्कर खाने से बचाने की बड़ी कृपा की है।

लेखक महाशय के धार्मिक विचारों और विश्वासों में कोई भी हेर फेर नहीं किया गया। इस विषय पर मुझ से और स्वर्गीय ओंकारनाथ वाजपेयी जी से बहुत कुछ बातचीत हुई थी और अन्त में यही निश्चय हुआ था कि जब तक कोई लेखक सामाजिक सिद्धान्तों पर कटाक्ष न करे तब तक उसके परिश्रम में छेड़ छाड़ करना सर्वथा अनुचित और असभ्यता है क्योंकि लेखक के विचार अपने हैं किसी पर बाध्य नहीं हैं। ऐसे विचारों का भार न तो सञ्चालक, न प्रकाशक और न सम्पादक ही के सिर पर रक्खा जाता है।

इसी प्रकार शंकर के सिद्धान्त वर्णन में भी हस्तक्षेप नहीं किया गया। बड़े २ महात्माओं के सिद्धान्तों के निरूपण करने में प्रायः लेखकों में मतभेद होता ही है फिर इतने प्राचीन महात्मा के सम्यक् तात्पर्य के प्रकट करने में यदि भेद हो तो आश्चर्य ही क्या। स्वयं लेखक महोदय ने यह कठिनाई नम्रता पूर्वक स्वीकार कर ली है और यह आग्रह नहीं करते कि उनका ही निरूपण तथ्य और साङ्गोपाङ्ग पूर्ण है।

मिश्र जी ने पुस्तक लिखने में अच्छा परिश्रम किया है और अपनी योग्यता का अच्छा परिचय दिया है आशा है कि सहृदय पाठक पुस्तक पढ़ कर लाभ उठावेंगे।

प्रयाग
कार्तिक कृष्ण सप्तमी-सं०-१९७५ } सम्पादक

उपोद्घात

परम कारुणिक भगवान ने संसार के जीवों को अनादि काल से अविद्या के बन्धन में फंसा हुआ देख के उनके उद्धारार्थ उस सृष्टि की रचना की कि जिसमें जीवगण अपने मन और आत्मा के संयोग द्वारा अविद्या जनित बन्धन को मिथ्या ज्ञान यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके मुझ (ईश्वर) सरीखे मुक्त और सदा के लिये सच्चिदानन्द स्वरूप हो जावें ।

भारतवर्ष के प्राचीन आर्य जाति के महापुरुषों ने इस संसार में जन्म लेके अपने आचरण के सुधार रूप प्रयत्न द्वारा विद्याभ्यास करके ईश्वर की अलौकिक प्रेरणा से ज्ञान प्राप्त किया। उन महर्षियों ने जगत् के उपकार के लिये वे मन्त्र उच्चारण किये कि जिनका पीछे से शिष्यों की सहायता द्वारा संकलन भगवान वेद व्यास जी ने किया । भगवान् विष्णु को बार बार इस संसार में जन्म लेके इन वेदों और उनके भली भांति पढ़नेवाले सज्जनों की रक्षार्थ प्रयास करना पड़ा। जब वेदों ने इस बात का अभिमान किया कि हम अवश्य बड़े उत्कृष्ट और श्लाघ्य हैं हमारी ही रक्षा के लिये भगवान् को अनेक बार धरणीतल पर अवतार लेना पड़ा, तब सर्व शक्तिमान श्री जगदीश्वर ने उनके गर्व को चूर्ण करने के लिये बुद्धावतार ग्रहण किया । भगवान ने प्रबल युक्तियों द्वारा वेदों का यथेष्ट खण्डन किया* और अहिंसा

---

* लेखक महोदय का यहां पर वेदों से तात्पर्य वैदिक कर्म काण्ड से है जैसा कि उस समय में और आजकल प्रचलित है । सं०

पर इतना अधिक बल दिया कि वैदिक कर्मकाण्ड में विहित यज्ञ में भी लोग पशुघात को नितान्त घृणित और निन्द्य कार्य समझने लगे। बुद्ध रूप धारण करके भगवान् ने सब को अपने उपदेश का अधिकारी बना लिया और प्राचीन महर्षियों की नाईं ऊँचे हुए अधिकारी को कठिन और दुरूह संस्कृत भाषा के शब्दों में उपदेश न दे के उन्हीं लोगों के समझने योग्य उनकी प्रचलित प्राकृत भाषा में व्याख्यान और शिक्षाएँ दीं कि जिसमें वे लोग निज लाभ की बातों को भली भाँति समझ सकें। परिणाम यह हुआ कि अधिकांश भारतवासी वैदिक धर्म का परित्याग करके नवीन और अवैदिक बौद्धमत के अनुयायी हो गये। इस अवसर पर भगवान् ने उन असुरों को भी वैदिक पथ से विरुद्ध मार्ग पर चलने के लिये बहकाया जो वैदिक रीति पर चलके भगवद्भक्ति और वैदिक कर्मकाण्ड के विहित अनुष्ठान द्वारा देवताओं की नाईं अपना भी हितसाधन करने में समर्थ होने लगे थे।

वेदों का गर्व खर्व हुआ।* ब्राह्मणों के निर्दिष्ट वैदिक धर्म के मानने वालों की संख्या का धीरे २ ह्रास होने लगा। बौद्ध मत वालों से कुल भारतवर्ष थोड़े ही समय में भर गया। लोग प्राचीन वैदिक मत को न केवल छोड़ने किन्तु भूलने भी लगे। केवल काशी आदि कतिपय तीर्थ क्षेत्रों में बड़ी कठिनाई से वैदिक धर्म कथञ्चित बचा रहा परन्तु नास्तिक मत पर लोगों का विश्वास चिरकाल तक ठहर न

---

* वेद भी सचेष्ट जीव हैं लेखक महोदय काव्य दृष्टि से ऐसा कहते हैं — सं०

सका । होते २ बौद्ध मत वाले भी आचार्यों तथा शिक्षकों में ऐसा आलस्य और विलास आ पहुंचा कि सदाचार की नितान्त उपेक्षा दृष्टि पड़ने लगी। ऐसा समाज अधिक समय तक बुद्धिमान लोगों के बीच प्रतिष्ठा का पात्र नहीं बना रह सकता। क्रमशः काल पाके भारत निवासियों का चित्त बौद्ध धर्म की ओर से हटने लगा अब फिर ब्राह्मणों की बन पड़ी उन्होंने अनेक प्रकार के प्रयत्न करके बौद्धों की धर्म शिक्षा से भटके हुए लोगों को युक्ति और तर्क द्वारा बहुत कुछ समझा बुझा के फिर वैदिक धर्म की ओर प्रेरित किया। अब रुचि भेद के अनुसार वैदिक धर्म की बहुतेरी शाखाएं हो चलीं* और संस्कृत पढ़नेवाले ब्राह्मणों ने वैदिक धर्म की शाखाओं के प्रसिद्ध प्रसिद्ध १८ विभाग किये। वे विभाग इस प्रकार से हुये कि चार वेद (ऋक्, यजुस्, साम और अथर्वन्) चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद और अर्थशास्त्र) ६ वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छन्द) तथा ४ उपाङ्ग (पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र) सब मिलके १८ प्रस्थान भेद होगये। तदनन्तर इनके बीच में भी अनगिनती शाखाएं फूट के निकलीं और सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णव, शाक्त स्मार्त, गाणपत्य, सौर इत्यादिक विभिन्न पथ वेदों ही के प्रामाण्य पर प्रचलित हुए। इन सब में परस्पर बड़ा मत भेद और झगड़ा भी प्रकट हुआ।

*रुचियों की भिन्नता के कारण भी शाखायें वैसे ही विस्तृत हुईं जैसे विद्या के प्रसार और श्रुतियों के अर्थों को स्पष्ट रूप से समझने के लिये हों, वैष्णव, पाशुपत आदिक संस्थाओं और मत मतान्तरों की प्रवृत्ति अवश्य रुचि वैचित्र्य के कारण जान पड़ती है—सं०

इस झगड़े का निबटेरा कथन करने के पूर्व यहाँ पर वैदिक विद्या की अठारहों शाखा का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है—

साधारण रीति से वेद के दो भाग किये जाते हैं प्रथम कर्मकाण्ड जिसमें यज्ञादि वैदिक क्रियाओं का वर्णन है द्वितीय ज्ञानकाण्ड जिसमें कि विशेषतः ईश्वर वा ब्रह्म का निरूपण किया गया है। कर्मकाण्ड में वैदिक संहिता अर्थात् मूल मन्त्र समूह और ब्राह्मण ग्रन्थ हैं और ज्ञानकाण्ड में आरण्यक तथा उपनिषद् गिने जाते हैं।

यूरोपीय विद्वानों के मत में ऋग्वेद संहिता सब से प्राचीन ग्रन्थ है और इसका निर्माण काल सन् ईस्वी के आरम्भ से लगभग १५०० वर्ष पूर्व हैं। * साम और यजुस् ऋक् की अपेक्षा पिछले और अथर्वन सभी वेदों में पिछला है। ब्राह्मण उपनिषद् और आरण्यक वैदिक संहिता के पीछे से रचे गये हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि वैदिक संहिता के मन्त्र तो बहुत प्राचीन काल से व्यवहार में चले आ रहे हैं परन्तु महाभारत युद्ध के समकाल में वर्तमान द्वैपायन व्यास जी ने स्वयं और अपने शिष्यों द्वारा प्रचलित मन्त्रों का संग्रह करके जो संहिता रची उसके जितने भाग अब प्राप्य हैं वे वैदिक संहिता के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन काल में लोग वैदिक मन्त्रों को सुन लिया करते थे इसीसे वेदों को श्रुति अर्थात् सुने गये ग्रन्थ कहते हैं।

---

* वेदों के निर्माण काल का अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ अतः सन् सम्वत द्वारा गणना करना व्यर्थ है। सं०

ऋग्वेद के द्वारा प्राचीन हिन्दुओं के विषय में बहुत सी ऐतिहासिक बातें जानी जाती हैं। इसमें १०१७ सूक्त हैं। अदिति, द्यौस्, इन्द्र, यम, अग्नि, सूर्य, वरुण, उषस्, मरुत्, अश्विनीकुमार, रुद्र, विष्णु आदिक अनेक देवताओं के भजन हैं। पंजाब प्रदेश की सब नदियों और गङ्गा, यमुना का भी नाम ऋग्वेद में मिलता है। प्राचीन हिन्दू समाज, लोगों का रहन सहन, व्यापार तथा उन धातु, अन्न, पशु, पक्षी आदिकों के नाम भी जो इस वेद में मिलते हैं उस समय के इतिहास का पता देते हैं।

साम गाये जाने वाले मन्त्रों को और यजुस् वैदिक यज्ञादि क्रियाओं के समय में पढ़े जाने वाले मन्त्रों को कहते हैं। ये दोनों प्रकार के मन्त्र क्रमशः सामवेद और यजुर्वेद में सङ्कलित हैं। सामवेद के ९५ मन्त्रों को छोड़ शेष सब मन्त्र और यजुर्वेद के लगभग आधे मन्त्र ऋग्वेद में भी पाये जाते हैं। यजुर्वेद के दो भाग शुक्ल और कृष्ण यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हैं। कुछ भाग गद्य में भी है। सांसारिक कार्यों में सफलता पाने तथा रोग और शत्रु आदि निवारणार्थ जो वैदिक मन्त्र पढ़े जाते हैं वे अथर्वन् कहलाते हैं और उनका संग्रह अथर्ववेद में किया गया है। वेद मन्त्रों का अर्थ समझाने के लिये टीका रूप से जो ग्रन्थ लिखे गये हैं उन्हें ब्राह्मण कहते हैं। कुछ विद्वान् महर्षियों ने एकान्त वन में जाके वैदिक मन्त्रों के अर्थ सोचे और जीवन, मृत्यु, आत्मा इत्यादि के विषय की जाँच करके आरण्यक नाम ग्रन्थों द्वारा निज शिष्यों को शिक्षा दी। उपनिषद ग्रन्थों में तर्क द्वारा ब्रह्म का विचार किया गया है और आत्मा का ज्ञान ही मोक्ष

है ऐसा कहा है। ऊपर कही हुई संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि सब ग्रन्थों की गणना श्रुति में होती है।

छओं वेदाङ्गों के नाम ऊपर कहे जा चुके हैं ये सब ग्रन्थ अवश्य ही श्रुतियों से पिछले हैं और उनके अध्ययन में सहायक हैं। शिक्षा में शब्दों के उच्चारण की विधि और व्याकरण द्वारा शुद्ध भाषा का प्रयोग सिखाया जाता है। पाणिनि नामक आचार्य (जो रमेशचन्द्रदत्त जी की संमत्यानुसार सन् इस्वी के आरम्भ से ८०० वर्ष पूर्व शलातुर नाम स्थान के निवासी थे) शिक्षा और व्याकरण की अष्टाध्यायी के प्रसिद्ध रचयिता हैं। अष्टाध्यायी सरीखा उत्तम व्याकरण और किसी देश वा भाषा में आज तक नहीं पाया गया। अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ विशद करने के लिये बामन ने काशिका वृत्ति भट्टोजी दीक्षित ने सिद्धान्त कौमुदी रची। वेद के मन्त्रों के गायत्री, त्रिष्टुप् आदि छन्दों को पहिचानने के लिये पिङ्गल नाम आचार्य ने छन्दःशास्त्र रचा। वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त शब्दों की व्युत्पत्ति और उसका ठीक २ अर्थ बताने के लिये यास्काचार्य ने (जो सन् ईस्वी से लगभग ६०० वर्ष पूर्व रहे होंगे) निरुक्त लिखा *। वेद में कहे कौन २ से काम करने का क्या क्रम है उसे कल्पनाम वेदाङ्ग बतलाता है। यह वेदाङ्ग छोटे २ सूत्रों में लिखा गया है जिसके तीन भाग अर्थात् श्रौत (वैदिक कर्मकाण्ड सम्बन्धी) गृह्य

*लेखक महोदय ने कहीं पर हिन्दू विश्वास का और कहीं पर पाश्चात्य विद्वानों की सम्मति का अवलम्बन किया है जिससे प्रसङ्ग वश समय का निर्णय कुछ दुर्घट हो गया है–सं०

(गृहस्थ के कर्त्तव्य सम्बन्धी) और धर्म (सदाचार सम्बन्धी) है। लाट्यायन आदि ऋषि श्रौत सूत्रों के, आश्वलायन आदि गृह्यसूत्रों के और आपस्तम्ब आदि धर्म सूत्रों के रचयिता हैं वेद में कहे यज्ञादि कार्य नियत समय पर होने चाहिये अतएव समय विभाग बतलाने के लिये छठवाँ वेदाङ्ग ज्योतिष लिखा गया जिसमें तिथि, वार, मास, वर्ष नक्षत्र, योग आदि की पहिचान और सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की चाल का वर्णन और ठीक ठीक समय मुहूर्त्त आदि जानने की रीति बतलाई गई है। पराशर (कदाचित् सन् ईस्वी से २०० वर्ष पहिले) और गर्ग (सन ईस्वी से लगभग १०० वर्ष पहिले) ज्योतिष शास्त्र के लिखने वाले प्राचीन आचार्य हैं। आर्य भट्ट जिनका जन्म पटना नगर में सन् ४७६ ई० में हुआ था, बराहमिहिर जो उज्जयिनी में सन ५०२ ई० में जन्मे और ५८७ ई० में मरे, ब्रह्मगुप्त, खीष्टीय ७वीं शताब्दी में और भास्कराचार्य सन ११५० ई० में पिछले ज्योतिष शास्त्रों के प्रसिद्ध रचयिता हैं।

वेदों के चार उपाङ्गों के नाम (१) पुराण (२) न्याय (३) मीमांसा और (४) धर्मशास्त्र हैं। पुराण शब्द का अर्थ है प्राचीन। पुराणों में संसार की सृष्टि, सृष्टि परम्परा, ऋषियों और राजाओं की वंशावली, इन वंशों में उत्पन्न महापुरुषों का चरित्र कथन और मन्वन्तर का वर्णन है। पुराण गिनती में १८ हैं और हिन्दुओं का विश्वास है कि उन्हें व्यास जी ने जो महाभारत के युद्ध के समय संसार में वर्तमान थे बनाया है। अठारहों पुराणों के नाम ये हैं ब्रह्म, ब्रह्मांड ब्रह्मवैवर्त्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन, विष्णु, भागवत, नारदीय, गरुड़, पद्म, बराह, मत्स्य, कूर्म, लिङ्ग, वायु, स्कन्द और अग्नि। इन

पुराणों में प्राचीनकाल का बहुत कुछ इतिहास मिलता है और विष्णु, वायु, मत्स्य, श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्माण्ड पुराण ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत कुछ उपयोगी जँचते हैं। यूरोपीय विद्वान लोग पुराणों को बहुत प्राचीन और व्यास जी ही का बनाया हुआ स्वीकार नहीं करते। उन लोगों की कल्पना है कि ये ग्रन्थ बहुत अर्वाचीन और भिन्न २ मनुष्यों के विरचित हैं। पुराणों के अतिरिक्त १८ उपपुराण भी हैं जिन्हें व्यास जी के पिता पराशर ने बनाया ऐसी किंवदन्ती है। इन उपपुराणों में भी पुराणों ही की नाईं सृष्टि आदि का वर्णन लिखा गया है। उपपुराणों में शिवपुराण, देवी भागवत, गणेश और नरसिंह आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

दूसरा उपाङ्गन्याय है, जिसमें शास्त्रार्थ करने के नियम बतलाये गये हैं और पदार्थों का विभाग तथा उनका परस्पर का सम्बन्ध भी निर्णय किया गया है। गौतम ऋषि ने न्याय सूत्र लिखे हैं और वात्स्यायन ऋषि ने उन पर भाष्य रचा है गौतम ने सोलह पदार्थ माने हैं। वैशेषिक सूत्रों के रचयिता कणाद मुनि हैं। इनने छः पदार्थ माने हैं। गौतम और कणाद बहुत प्राचीन ऋषि हैं और इनके समय का ठीक ठीक पता लगना दुर्घट है।

तीसरा उपाङ्ग मीमांसा है इसके भी दो भाग हैं। पहिले का नाम पूर्व मीमांसा है इसमें वेद में लिखे यज्ञादि कर्मों के विषय में तर्क द्वारा सिद्धान्त निर्णय किया गया है और धर्म तथा कर्त्तव्य कर्मों पर बड़ा बल दिया गया है। पूर्व मीमांसा शास्त्र को जैमिनि ने सूत्रों के रूप में लिख के प्रस्तुत किया। जैमिनि सम्भवतः व्यास जी के समकालीन थे। मीमांसा का

दूसरा भाग उत्तर मीमांसा वा वेदान्त है। व्यास जी ने (जो महाभारत के युद्ध काल में वर्तमान थे) वेदान्त सूत्रों को लिख के उपनिषदों से प्रतिपादित ब्रह्म का ज्ञान ही मोक्ष है यह बात सिद्ध की है। वेदान्त सूत्रों पर स्वामी शङ्कराचार्य ने भाष्य लिखा है यह ब्रह्म सूत्र भाष्य और सब भाष्यों से अधिक प्राचीन, प्रसिद्ध और प्रामाणिक है। जब भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार बहुत बढ़ गया था तब शङ्कराचार्य आदिक आचार्यों ही ने अपनी बुद्धि और युक्ति के बलसे बौद्धाचार्यों को परास्त करके फिर से वैदिक धर्म का प्रचार किया। युरोपियन विद्वान् लोग भी स्वीकार करते हैं कि आज तक शङ्कराचार्य की युक्तियों से बढ़ के ब्रह्म वा आत्मा तथा मोक्ष के प्रतिपादनार्थ और कोई युक्ति देखने वा सुनने में कहीं किसी देश वा समय में नहीं आई।

चौथा उपाङ्ग धर्मशास्त्र है। इसी में कपिल मुनि कृत सांख्यशास्त्र, पतञ्जलिमुनिकृत योगशास्त्र, धर्म प्रधान इतिहास ग्रन्थ रामायण और महाभारत तथा मन्वादि स्मृतियाँ हैं। सांख्य शब्द संख्या वा गिनती से बना है। सांसारिक तत्वों की यथोचित संख्या निर्णय करने के कारण कपिलमुनि के ग्रन्थ का नाम सांख्य है। लोग सांख्य शब्द का अर्थ यथोचित ज्ञान भी बतलाते हैं कपिल ने वेद और युक्ति दोनों का प्रामाण्य स्वीकार किया है परन्तु ईश्वर की सिद्धि नहीं की है। उनके मत में पुरुष (चेतन) और प्रकृति (जड़) दो भिन्न २ पदार्थ हैं। विकार प्रकृति में है पुरुष में नहीं यदि पुरुष अपने को प्रकृति से भिन्न जान लेवे तो यथार्थ ज्ञान से वह मोक्ष को प्राप्त हो जावे। कपिल गौतम वा कणाद की

नाई बड़े प्राचीन ऋषि हैं। उनके समय का कुछ पता नहीं।

योगशास्त्र के प्रणेता भगवान् पतञ्जलि कदाचित् वही हैं जिनने व्याकरण का महाभाष्य रचा। ये पटना के शुङ्ग वंशी राजा पुष्यमित्र (ख्रीष्ट से प्राय: पौने दो सौ वर्ष पूर्व) के समय में विद्यमान थे। तत्वों की संख्या तो पतञ्जलिने भी कपिल के सांख्यानुसार मानी है पर ईश्वर सिद्धि की युक्तियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। योग का अर्थ चित्तवृत्ति का सांसारिक पदार्थों की ओर से रोक के ईश्वर की ओर लगाना है। योग में चित्त के एकाग्र करने की विधि और ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बताया है। न्याय, वैशेषिक, पूर्व और उत्तर मीमांसा, सांख्य तथा योग के छओं ग्रन्थ हिन्दुओं के बीच षड्-दर्शन वा षट् शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं।

धर्म प्रधान इतिहास ग्रन्थ रामायण और महाभारत हैं। रामायण को बाल्मीकि ऋषि ने प्राय: रामायण में उल्लिखित घटना के समान समय में वा उसके तनिक पीछे बनाया। रामायण इतिहास ग्रन्थ भी है और काव्य भी। इसके पहिले संस्कृत भाषा में कोई काव्य नहीं रचा गया अतएव इसका नाम आदि काव्य भी है। रामायण में अयोध्या के महाराज दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र जी का जीवन चरित विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में ७ काण्ड और चौबीस सहस्र श्लोक हैं। यदि महाभारत युद्ध का समय ख्रीष्ट से १४२५ वर्ष पूर्व मान लिया जावे तो उस समय में वर्तमान राजा बृहद्बल से प्राय: ३० पीढ़ी पूर्व के पुरुष राजा रामचन्द्र जी का समय प्रतिपीढ़ा केवल २० वर्ष ही का लेखा लगाने से स ईस्वी से प्राय: २०२५ वर्ष पूर्व ठहरता

है अतएव बहुत संभव है कि वाल्मीकि जी भी खीष्ट से लगभग दो सहस्र वर्ष पूर्व के व्यक्ति हों। दूसरा धर्म प्रधान इतिहास ग्रन्थ महाभारत है जिसे परम प्रसिद्ध विद्वान् वेद व्यास जी ने बनाया। इसमें हस्तिनापुर के राजकुमारों अर्थात् कौरवों और पाण्डवों का इतिहास तथा उनके मध्य परस्पर कलह और युद्ध का वर्णन है। महाभारत के वर्णित इतिहास में नल और दमयन्ती का चरित और रामायण की पूरी कथा भी लिखी है। युधिष्ठिर की सत्यता, भीम, अर्जुन, दुर्योधन, कर्ण, भीष्म आदि का पराक्रम भीष्म की कठिन प्रतिज्ञा आदि बातें हिन्दू धर्म के सत्कार्यों के ऐसे आदर्श हैं कि आज सहस्रों वर्ष बीतने पर भी वे हिन्दुओं के गर्व के कारण हैं।

स्मृति ग्रन्थों में मानव धर्मशास्त्र वा मनुस्मृति आजकल बहुत प्रामाणिक समझी जाती है पर इसके निर्माणकाल का भी ठीक २ पता नहीं चलता। उससे उतर के याज्ञवल्क्य स्मृति का प्रचार है। यह ग्रन्थ भी कब बना सो कोई नहीं बता सकता है। मनु तथा याज्ञवल्क्य को छोड़ और भी वशिष्ठ, पराशर, विष्णु आदिक ऋषियों की विरचित अनेक स्मृतियाँ हैं जो प्रचलित देखने में आती हैं पर इनमें से कौन कब बनी इसका पता लगना दुर्घट है।

चारों उपवेदों में से आयुर्वेद में रोग के निदान और चिकित्सा आदि का वर्णन है। धन्वन्तरि, चरक (खीष्टीय प्रथम शताब्दी) और सुश्रुत (खीष्टीय चतुर्थ शताब्दी) आदि इसके आचार्य हैं। धनुर्वेद में अस्त्रों शस्त्रों के नाम, उनके प्रयोग और संहार के मन्त्र इत्यादि हैं। विश्वामित्र मुनि जो रामायण के समय में और उसके कुछ पूर्व भी

संसार में वर्तमान थे इस शास्त्र के रचयिता सुनने में आते हैं। गान्धर्व वेद में गाने बजाने नाचने आदि की विद्या का यथोचित रीति से वर्णन है। इस शास्त्र के आचार्य भरत मुनि कोई अत्यन्त प्राचीन व्यक्ति हैं जिनका विरचित नाट्य शास्त्र संसार में प्रचलित है।

अर्थ शास्त्र में राजनीति सिखलाई गई है और शुक्र, विदुर, कामन्दक, चाणक्य आदि महात्माओं के विरचित नीति शास्त्र के ग्रन्थ जो संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध हैं उन्हें इसी उपवेद का भाग समझना चाहिये।

उक्त प्रकार के अनेकों प्रस्थानों के अपनी २ रुचि के भेद से मानने वाले अनेक नये २ पन्थ भारतवर्ष में प्रचलित हो गये। कोई शिवजी को, कोई भगवान विष्णु को, कोई जगतप्रकाशक सूर्य को, कोई विघ्नविनाशक गणेश जी को और कोई आद्याशक्ति श्रीदुर्गाजी को प्रधान देवता मान के उनका पूजन करने में हठधर्मी बन अन्य देवताओं के उपासकों का प्रबल विरोधी हो गया। प्रत्येक आचार्य ने अपने आराध्य देवता के नामानुसार नवीन नाम वाले बिलग २ पन्थ बना लिये।

जब वैदिक धर्म की भिन्न २ शाखाओं में परस्पर के मतभेद के कारण नित्य नये २ झगड़े खड़े होने लगे तब इस बात की आवश्यकता हुई कि आपसी झगड़ों का निबटेरा प्रबल युक्तियों द्वारा करके किसी न किसी प्रकार से सभी शाखाओं का सामंज्जस्य किया जावे। प्रबल युक्तियों के द्वारा बौद्धमत का खण्डन करके लोगों को वैदिक मत की ओर प्रवण करने के लिये जिन विद्वान् पण्डितों ने चेष्टा की उनमें से कुमारिल

भट्ट जी का नाम सब से पहिले सुन पड़ता है। इनका सिद्धान्त वैदिक कर्म काण्ड पर विशेष बल देके वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान द्वारा पुरुषों को स्वर्ग प्राप्ति रूप परम पुरुषार्थ का पथ दिखलाना था। लोग कहते हैं कि स्वामी शङ्कराचार्य कुमारिलभट्ट के शिष्यों में से हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भगवत्पाद शङ्कराचार्य को प्रबल युक्तियों द्वारा बौद्ध मत का खण्डन कर के सनातन वैदिक धर्म को भारत वर्ष में बद्धमूल करने का भार सौंपा गया था और अपनी असाधारण प्रतिभा से वे किस प्रकार इसमें सफल हुये सो बात उनकी जीवनी से प्रकट होगी। भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने वैदिक धर्म की अनेक शाखाओं से किसी को भी हेय वा नीच नहीं बतलाया परन्तु प्रत्येक शाखा की हठधर्मिता का खन्डन उन्होंने अपनी युक्तियों से अवश्य किया। कर्म मीमांसा का भी प्रामाण्य चित्त शुद्धि के लिये स्वामी जी ने ग्रहण किया परन्तु इनका सिद्धान्त पक्ष अद्वैत वेदान्त अर्थात् निर्गुण ब्रह्म को छोड़ शेष सब मिथ्या है यही प्रतिपादन करना था। पूर्व ही में भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास जी ब्रह्मसूत्र वा वेदान्त सूत्रों में संक्षेप रूप से अद्वैतवाद का प्रतिपादन कर चुके थे * उन सूत्रों की विशद रूप से व्याख्या करके अद्वैतवाद को सिद्धान्त पक्ष स्थिर करना और उसका प्रचार भगवत्पाद शङ्कराचार्य

---

*कृष्ण द्वैपायन व्यास और वादरायण व्यास दो भिन्न २ व्यक्ति थे। जैसा आगे एक टिप्पणी में कहा जायगा स्वामी शङ्कराचार्य जी स्वयं इस भेद को मानते थे। विद्वानों में भी इस पर मत भेद है परन्तु पूर्ण रूप से निश्चय न होने के कारण केवल संकेत कर देना उचित समझा गया—सं०

और उनके शिष्यों के माथे पड़ा। शङ्कराचार्य जी का सिद्धान्त था कि मनुष्य के लिये मोक्ष ही परम पुरुषार्थ है और इसकी प्राप्ति का उपाय वैदिक कर्म कांड द्वारा चित्त शुद्धि प्राप्त करके मनुष्य का साधन चतुष्टय सम्पन्न हो यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में उद्योग युक्त और प्रयत्न शील होना था। आत्मा वा ब्रह्म रूप सत् पदार्थ के ज्ञान से उस मुमुक्षु जीव को मोक्ष प्राप्ति होगी। निदान अपने इस सिद्धान्त क प्रचार के लिये स्वामी जी ने ग्रन्थ रचना तथा देश २ में पर्यटन और उपदेश द्वारा अच्छी चेष्टा की और यहां तक वे सफल भी हुये कि आज कल भारत वर्ष देश में सौ में से प्राय: पच्चासी मनुष्य शङ्कराचार्य के अद्वैतवाद सिद्धान्त को स्वीकार करते देखने में आते हैं ऐसा जान पड़ता है कि स्वामी शङ्कराचार्य जी ने किसी भी मत से प्रकट विरोध न कर के सब को एक में मिलाने ही की चेष्टा की इसका परिणाम उनकी अद्भुत सफलता है। थोड़े ही समय में स्वामी शङ्कराचार्य तथा उनके शिष्यों द्वारा वेदान्त मत का प्रधानतया प्रचार और उसकी पुष्टि के लिये शेष वैदिक मतों का ग्रहण प्रारम्भ हुआ। बौद्धादिकों के अवैदिक मतों का प्रबलतम युक्तियों से खन्डन करके ऐसा प्रयत्न कर दिखाया गया कि बौद्ध धर्म तो भारत वर्ष से प्राय: लुप्त ही होगया। इन्हीं महापुरुष के विषय में कुछ संक्षिप्त इतिहास आदि आगे के पृष्ठों में लिखा जाता है।

जिस समय परस्पर के वैमनस्य के कारण भारत वर्ष में सनातन वैदिक धर्म की अत्यन्त दुरवस्था हो चली थी कि प्रत्येक प्राणी का मत प्राय: एक स्वतन्त्र धर्म बनने लग गया था वैदिक कर्म कांड पर लोगों की नितान्त अश्रद्धा

होने लगी थी तथा नवीन २ देवताओं की पूजा के नाम से लोग भयङ्कर अत्याचार करने लगे थे प्राचीन ऋषि मुनि के लिखे पवित्र धर्म के समझने की योग्यता साधारण जनों में नहीं थी बौद्धादि नास्तिक गण उस धर्म से प्रबल विरोध दिखाते हुये साधारण लोगों की बोलचाल में अपने मत का सिद्धान्त सुना के लोगों को लुभा के वर्णाश्रम धर्म का बखेड़ा कपोल कल्पना कहके उसका अनादर कर पात्र अपात्रों को नवीन मत की दीक्षा दे वैदिक धर्म को दबा देने वा उखाड़ फेंकने में प्रबल थे उस कठिन समय में वैदिक धर्म को संभालने, परस्पर का वैमनस्य मिटाने और नास्तिक धर्म का खन्डन करने के लिये परम कारुणिक भगवान् ने शङ्कराचार्य जी को संसार में भेजा था।

राज्य विभाग

जिस समय स्वामी शङ्कराचार्य जी दक्षिण भारत में प्रादुर्भूत हुये उस समय सर्वत्र बौद्ध मत का बल घटता और ब्राह्मणों का वैदिक मत फिर अपनी चटक पर था। बौद्ध भिक्षुकों के नियमों में अनेक प्रकार के दोष अनाचार आदि के कारण आन पहुंचे थे कि जिनसे साधारण लोग खिन्न होके उस पन्थ से भाग निकले। ब्राह्मण जाति के वैदिक आचार्यों को भी अपने मत के पुनः प्रचार का अच्छा अवसर हाथ आया अतएव इन लोगों ने अपनी शिक्षा द्वारा देश के अधिकारी राजाओं को वैदिक धर्म की

ओर उन्मुख किया। उस समय भारत के जिस किसी भाग में देखिये तो प्राचीन क्षत्रियों की सन्तति जो राज पूतों के नाम से प्रसिद्ध थी देश भर में अपना विजय डङ्का बजाने और प्राचीन वैदिक धर्म के झण्डे को उठाने लगी थी। भगवत्पाद शङ्कराचार्य जी के प्रादुर्भाव काल अर्थात् आठवीं शताब्दी ख्रीष्टीय के शेष काल में भारत वर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में जो प्रसिद्ध राज वंश व्याप्त थे उनकी तालिका नीचे दी जाती है।

(१) कश्मीर में कर्कोटक बंश के जयापीड़ विनयादित्य नामक राजा का राज्य वर्तमान था उसने सन् ७१६ ई० से लेके ८१३ ई०* तक राज्य किया। इस राजा ने कान्यकुब्ज देश के स्वामी बज्रायुध को हराया था और बङ्गाल तथा नैपाल आदि देशों पर चढ़ाई की थी। यह राजा क्रूर प्रकृति का था।

(२) कान्यकुब्ज वा दक्षिण पाञ्चाल नाम देश में इन्द्रायुध नामक राजा ने सन् ७८३ ई० से लेके प्राय: सन् ८०० ई० तक और उसके उत्तराधिकारी चक्रायुध ने प्राय: सन् ८०० ई० से ८१६ ई० तक राज्य किया। इन्द्रायुध राजा उसी बज्रायुध का उत्तराधिकारी था जिसे कश्मीर के जयापीड़ ने परास्त किया था। इन्द्रायुध को भी बंगाल और बिहार के राजा धर्मपाल ने पराजित किया था चक्रायुध भी अपने अधिकृत प्रदेश पर अधिक समय लों स्थिरता पूर्वक राज्य न कर सका क्योंकि दक्षिण की ओर से परिहार राजपूतों के मुखिया नागभट ने आके चक्रायुध से कान्यकुब्ज देश छीन कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया।

---

* लेखक महोदय ने मैबलडफ़ के अनुसार यह बात लिखी होगी कदाचित् जयापीड़ तो सन् ८०८ ही में मर गया था—स०

(३) सिन्ध देश में अरब के मुसलमानों ने अपना अधिकार सन् ७१२ ई० से ७१४ ई० के बीच में जमा लिया था और क्रमशः मुलतान तक उन लोगों के हाथ बढ़ आये थे। इन लोगों ने सन् ७१४ ई० से लेके ८२८ ई० तक सिन्ध में स्वाधिकार अक्षत रक्खा परन्तु उक्त वर्ष में प्रबल राजपूत जाति के लोगों ने वहाँ से मुसलमानों को निकाल बाहर किया।

(४) दिल्ली वा इन्द्रप्रस्थ में तोमर वन्श के क्षत्रिय राजाओं ने अपना अधिकार सन् ७३६ ई० में स्थापित किया और उस वंश के गाङ्गेय नामक राजा ने सन् ७७३ ई० से ७६४ ई० तक राज्य किया उसके उत्तराधिकारी राजा पृथिवीमल्ल का राज्य सन् ७६४ ई० से ८१४ ई० तक रहा।

(५) इस समय बंगाल और बिहार प्रदेशों में पाल वंशी राजा लोगों ने अपना अधिकार स्थापित कर रक्खा था इस वंश के द्वितीय राजा धर्मपाल ने प्रायः सन् ७८० ई० से ८४४ ई० तक ओदन्तपुरी में राज्य किया। विक्रमशिला का प्रसिद्ध पहाड़ी बिहार इसी धर्मपाल का बनवाया हुआ लोग बताते हैं। धर्मपाल ने कान्यकुब्ज के राजा इन्द्रायुध को परास्त किया था।

(६) गुजरात देश के पश्चिमी भाग में काठियावाड़ प्रायद्वीप के बीच अन्हलवाड़ा पत्तन नामक नगर बसा के चापोत्कट वंशी राजाओं ने राज्य स्थापित किया था। इस वंश के प्रथम राजा बनराज ने सन् ७४६ ई० से ८०६ ई० तक वहाँ पर राज्य किया उसके पुत्र योगराज ने वहीं अपने पिता के राज्य सिंहासन पर ८०६ ई० से ८४३ ई० तक राज्य किया। गुजरात

के शेष भागों से कहीं पर राष्ट्रकूटों ने भी अपना राज्य स्थापन किया। इस वंश के राजा कर्कराज द्वितीय प्राय: सन् ७५७ ई० में राज्य करते थे सन् ८०१ ई० के लगभग इन्द्रराज गुजरात का अधिकारी था।

(७) पंजाब देश में * कनिष्क के वंशज तुर्की शाहिया राजाओं ने वहाँ से हूणों को खदेड़ के अपना नवीन राज्य स्थापित किया। पंजाब और काबुल में इन तुर्की शाहिया लोगों का राज्य सन् ५२८ ई० के अनन्तर से लेकर सन् ८८० ई० तक रहा।

(८) अजमेर में चौहान जाति के राजपूत क्षत्रियों ने अपना राज्य स्थापित कर रक्खा था। इस वंश के राजा हर्षराज की मृत्यु सन् ७७० ई० के लगभग हुई। उसका उत्तराधिकारी कुजगनदेव बड़ा पराक्रम शाली राजा इस समय में अजमेर का राज्यशासन करता था।

(९) चित्तौड़ में सन् ७३५ ई० में सूर्यवंशी राजकुमार बप्पारावल ने मान नामक मोरी वंशी के राजा से वहाँ का राज्य छीन के अपने अधिकार में कर लिया और इस समय में उसी बप्पारावल की सन्तति चित्तौड़ में राज्य कर रही थी।

(१०) मालवा और राजपूताना आदि देशों के भिन्न भिन्न भागों में अनेक राजपूत जातियों का अधिकार रहा होगा।

* यह अत्यन्त संशयग्रस्त है कि पञ्जाब में तुर्की शाहियों का राज्य स्थापित था और यदि तुर्की शाहियों का राज्य था भी तो वह पश्चिमी पञ्जाब के सीमाप्रान्त की ओर रहा होगा। सं०

सम्भवत: ये राजपूत लोग उस यशोधर्मन् की सन्तान परम्परा में से होंगे जिन्होंने मगध के राजा बालादित्य की सहायता से हूण वंशी क्रूर राजा मिहिर कुल को मुलतान के पास कोहरूर के रणक्षेत्र में पराजित करके पश्चिम की ओर सन् ५२८ ई० में भगा दिया था। यहाँ पर सन् ८२५ ई० के लगभग प्रमर वा परमार (पँवार) वंशी राजपूत क्षत्रियों ने अपना राज्य स्थापित कर लिया।

दक्षिणी भारतवर्ष में इस समय निम्नलिखित राज्य थे—

(१) मालखेद के राष्ट्रकूटों में से ध्रुव ने जिसकी कि उपाधि निरुपम श्रीमल्ल थी) सन् ७८० ई० से लेके ७९३ ई० तक राज्य किया और उसके उत्तराधिकारी तृतीय गोविन्द ने सन् ७९३ ई० से लेके ८१५ ई० तक राज्य किया।

(२) मद्रास वा तिलिङ्गाना में इस समय पूर्वी चालुक्य वंश के क्षत्रिय लोग राज्य करते थे और उनमें से राजा विष्णु वर्द्धन चतुर्थ ने सन् ७६५ ई० से लेके सन् ८०१ ई० तक राज्य किया और उसके पीछे विजयादित्य द्वितीय का राज्य सन् ८०१ ई० से लेके सन् ८४१ ई० तक रहा।

(३) उड़ीसा और मैसूर में इस समय गाङ्ग वंशी राजाओं का राज्य था। उड़ीसा के राजा पूर्वीय गाङ्ग के नाम से प्रसिद्ध थे उनमें से राजा कलि ने सन् ७७८ ई० से ७९२ ई० तक राजा कमल ने सन् ७९२ ई० से ८११ ई० तक और राजा कुण्डल ने सन् ८११ ई० से ८२६ ई० तक राज्य किया।

(४) मैसूर में पश्चिमी गाङ्गों की राजधानी कावेरी नदी के किनारे तालकद नामक नगरी थी और इस समय वहाँ पर मारसिंह और शिवमार नामक राजा राज्य करते रहे होंगे।

(५) इस समय धुर दक्षिण में मदुरा पाण्डय वंशियों की राजधानी थी। उसके पश्चिम की ओर केरल देश में चेर जाति के क्षत्रियों का राज्य था और पूर्व की ओर काञ्ची में चोल जाति के राजा राज्य करते थे।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के जीवन चरित से पता चलता है कि उस समय मलाबार देश में राजशेखर नामक राजा और मध्यभारत में सुधन्वा नामक राजा राज्य करते थे परन्तु प्रचलित इतिहास की पुस्तकों में सन् ७८८ ई० से लेके सन ८२० ई० तक के बीच में इन राजाओं का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। जिस समय में स्वामी शङ्कराचार्य जी धरणी तल पर विद्यमान थे उस समय भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतों में और भी अनेक प्रसिद्ध विद्वान् वर्तमान थे उनमें से कुछेक का उल्लेख नीचे किया जाता है।

कश्मीरी शैव दार्शनिक और स्पन्दकारिका के रचयिता वसुगुप्त।

कविरहस्य काव्य के रचयिता हलायुध जिन्होंने अभिधान रत्नमाला भी लिखी है प्राय: इसी समय के व्यक्ति हैं। वे उस राष्ट्रकूट राजा कृष्ण के आश्रित और सभासद थे जिसने सन् ७६० ई० से ७८० ई० तक राज्य किया था।

काव्यालङ्कार के रचयिता वामन भी प्राय: इसी समय में अपनी उपस्थिति से कश्मीर देश को अलंकृत कर रहे थे। वामन ने अपने ग्रन्थ में माघ कवि विरचित शिशुपाल वध काव्य के श्लोक उदधृत किये हैं अतएव लोग अनुमान करते हैं कि महाकवि माघ वामन ही के समकालीन हैं। माघ

सदृश महाकवि का भारतवर्ष में प्रायः इसी समय के लगभग प्रादुर्भूत होना असम्भव नहीं है।

प्रायः इसी समय में अनेकों जैन पंडितों ने भी भारतवर्ष को अपनी स्थिति के सौभाग्य से परिवर्द्धित किया था। उन लोगों में से कतिपय विशेष प्रसिद्ध विद्वानों के नाम निम्न-लिखित हैं—

जिनसेन, वीराचार्य, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र और अकलङ्क। प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ यशस्तिलक चम्पू के रचयिता पंडित और कविवर सोमदेव जी भी इसी समय के विद्वानों के बीच परिगणित होते हैं।

उक्त वर्णनों से प्रकट हो जावेगा कि स्वामी शङ्कराचार्य जी के समय में राज्य और विद्या विस्तार की दशा भारतवर्ष में क्या थी।

जन्म काल

श्री द्वारकाधाम में रक्खी हुई स्वामी शङ्कराचार्य जी की पत्रिका के अनुसार विदित होता है कि भगवत्पाद शङ्कराचार्य का जन्म युधिष्ठिर संवत् २६३१ में हुआ। यदि युधिष्ठिर संवत् को यहाँ पर गत कलि नाम संवत् के साथ अभिन्न स्वीकार करें तो इसका तात्पर्य यह होता है कि स्वामी शङ्कराचार्य जी का जन्म सन ईस्वी से ४७० वर्ष पूर्व हुआ होगा। अथवा यदि राज तरङ्गिणी के रचियता कश्मीरी कल्हण पंडित वा उज्जयिनी के प्रसिद्ध ज्योतिषी वराह

मिहिर के निर्देशानुसार युधिष्ठिर संवत् का प्रारम्भ सन् ईस्वी से २४४८ वर्ष पूर्व मानें तो स्वामी शंकराचार्य जी का जन्म काल सन् १८३ ईस्वी होता है। इन दोनों मतों में से कोई एक ठीक है अथवा दोनों ही में कुछ भूल है इसका निर्णय सहज नहीं दीख पड़ता है।

श्रीयुत काशीनाथ त्र्यम्बक जी तैलङ्ग बतलाते हैं कि केरलोत्पत्ति नामक किसी प्राचीन पुस्तक में स्वामी शंकराचार्य का जन्म काल सन् ४०० ई० निर्दिष्ट होता है और उनका जीवन काल भी ३८ वर्ष था परन्तु स्वयं तैलङ्ग महाशय ही को इस सिद्धान्त पर विशेष श्रद्धा नहीं है कि केरलोत्पत्ति ही का लेख शुद्ध वा विश्वास योग्य है। तैलङ्ग महाशय स्वयं कल्पना करते हैं कि सन् ५९० ई० ही के लगभग स्वामी शंकराचार्य जी का प्रादुर्भाव काल है। उनका कथन है कि स्वामी शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्त्रुघ्न और पाटलिपुत्र नामक दोनों नगरों का नाम इस प्रकार से लिखा है कि जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रन्थ निर्माण के समय दोनों नगर विद्यमान थे और पाटलिपुत्र अर्थात् पटना नामक नगर तब गङ्गा और शोणनद के सङ्गम ही पर स्थित था। सन् ७५६ ई० में गंगा के प्रवाह में पड़के यह नगर नष्ट हो गया अतएव ब्रह्मसूत्र भाष्य जिसमें इस नगर के तत्काल में विद्यमान रहने के स्पष्ट लक्षण पाये जाते हैं सन ७५६ ई० से अवश्य ही पूर्व में रचा गया होगा और स्वामी शंकराचार्य जी का जन्म सन् ७८८ में होना तो ऐसी दशा में कदापि स्वीकार नहीं है।

तैलंग महाशय यह भी कहते हैं कि स्वामी शंकराचार्य

जी ने ब्रह्म सूत्र भाष्य में एक राजा पूर्णवर्मा का नाम इस प्रकार से उल्लेख किया है कि जो सामान्य देवदत्तादि की नाईं नहीं किन्तु किसी ऐतिहासिक व्यक्ति विशेष और स्वामी जी के समकालीन मगध देश के राजा ही का बोधक है। ध्यान देने की बात है कि यदि यह पूर्णवर्मा स्वामी जी का समकालीन राजा न होता तो उसके नामोल्लेख का कोई भी विशेष कारण लक्षित नहीं होता है। यह राजा बौद्ध धर्मानुयायी और पश्चिम मगध देश का अधिकारी रहा होगा। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग ने उसका उल्लेख किया है और यह भी लिखा है कि बुद्ध गया के पवित्र पीपल वृक्ष को जब बङ्गाल का नरखट राजा शशांक उखाड़ फेंकना चाहता था तब मगधराज पूर्णवर्मा ही ने उस वृक्ष की रक्षा की। जान पड़ता है कि ह्वान्त्साङ्ग के मगध में पहुंचने के पूर्व पूर्णवर्मा का देहान्त हो चुका था। इस राजा पूर्णवर्मा का राज्यकाल सन् ५९० ई० के लगभग सिद्ध होने के कारण स्वामी शंकराचार्य जी का भी वही समय निर्णीत होता है।

तामिल भाषा की किसी पुस्तक में काञ्चीनगरी के राजा तीरु विक्रम देव को स्वामी शंकराचार्य जी ने अपने मत का अनुगामी बनाया ऐसा भी वृत्तान्त कहीं पर उल्लिखित है। तैलङ्ग महाशय का अनुमान है कि यह राजा तीरुविक्रमदेव गाङ्ग वंशी है चालुक्य वंशी नहीं। श्रीयुत रामकृष्ण भण्डारकर इत्यादि विद्वज्जनों के कथनानुसार इस बात की अधिक संभावना है कि यह वही राजा तीरु विक्रम देव है जो सन् ईस्वी की छठां शताब्दी में वर्तमान था। परन्तु इस राजा के विषय में विशद रूप से कुछ ठीक ठीक पता न

लगने के कारण उसके ही सम्बन्ध से स्वामी शङ्कराचार्य जी का छठीं शताब्दी खीष्टीय में वर्तमान रहना विशेष प्रामाणिक बोध नहीं होता है।

शङ्कर दिग्विजय में माधवाचार्य जी ने दण्डी, बाण और मयूर आदि को स्वामी शङ्कराचार्य जी का समकालीन बतलाया है। इसमें तो सन्देह नहीं कि बाण और मयूर कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धन की राजसभा में उपस्थित रहने के कारण खीष्टीय छठवीं शताब्दी के अन्त वा सातवीं के आरम्भ के व्यक्ति हैं। दन्डी का समय भी लोगों ने खीष्टीय छठवीं शताब्दी ही माना है अतएव बहुत सम्भव है कि स्वामी शङ्कराचार्य जी भी उन पंडितों के समकालीन होने के कारण छठवीं शताब्दी के पिछले भाग अर्थात् सन् ५६० ई० के आसपास के व्यक्ति हों।

तैलङ्ग महाशय यह भी कथन करते हैं कि उन्हें पता लगता है कि ईश्वर कृष्ण की सांख्य कारिका पर गौड़पादाचार्य ने जो टीका की है उसका चीनी भाषा में अनुवाद जिस राजा के राज्यकाल में किया गया है वह सन् ५५७ ई० से लेके सन् ५८३ ई० तक के बीच में राज्य करता था। गौड़पादाचार्य स्वामी शङ्कराचार्य जी के परम गुरु अर्थात् स्वामी शङ्कराचार्य जी के गुरु गोविन्दयती के भी गुरु थे अतएव जिस समय गौड़पादाचार्य विरचित टीका का चीनी भाषा में अनुवाद हो रहा था उस समय गौड़पाद न केवल विद्यमान ही रहे होंगे किन्तु उनके प्रादुर्भूत हुए भी अधिक समय बीत गया होगा जिससे कि उनके विरचित ग्रन्थ ने इतनी अधिक प्रसिद्ध पा ली कि उसका चीनी भाषा में अनुवाद होने लगा। इस बात

से भी यही संकेत मिलता है कि जिस समय गौड़पादाचार्य विरचित सांख्यकारिका टीका का अनुवाद चीनी भाषा में होने लगा उस समय स्वामी शङ्कराचार्य का जो ग्रन्थकार के शिष्य हैं वर्तमान रहना असम्भव नहीं।

उक्त प्रमाणों से पण्डितवर काशीनाथ जी त्र्यम्बक तैलङ्ग यह सिद्धान्त स्थिर करते हैं कि जब लों न्यारी प्रबलतर खण्डन की युक्तियाँ न मिलें तब लों स्वामी शङ्कराचार्य जी को सन् ५६० ई० के निकटवर्ती समय का व्यक्ति स्वीकार करना उचित है।

श्रीयुत विजयचन्द जी मौजूमदार का कथन है कि शङ्कराचार्य जी के समकालीन उनके शिष्य सुरेश्वराचार्य जी थे और सुरेश्वराचार्य जी के शिष्य जिसने कि अपना नाम सर्वज्ञ लिखा है किसी चालुक्य वंशी राजा के राज्यकाल में वर्तमान थे इन सर्वज्ञ पण्डित ने संक्षेप शारीरिक नामक ग्रन्थ शङ्कर विरचित ब्रह्मसूत्र भाष्य के सहारे पर बनाया है। सर्वज्ञ ने स्वरचित पुस्तक में निर्देश किया है कि यह ग्रन्थ अक्षत शासक मनुकुलादित्य राजा के समय में बना। चालुक्य वंशी राजाओं ने अनेकों शिलालेखों में अपने को मनुवंशी बताया है अतएव उनका मनुवंशी होना तो निश्चित ही है अब उन राजाओं का वंशवृत्त देख के निर्णय करना चाहिये कि ये अक्षत शासक कौन हैं। वंशवृत्तों के देखने से पता चलता है कि चालुक्य राजा द्वितीय पुलकेशी नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि, उसके पौत्र के नाम के साथ विनयादित्य की और उसके प्रपौत्र के नाम के साथ विजयादित्य की उपाधि देखने म आती है। कुछ लोगों की सम्मति है कि प्रथम राजा ने अपने नाम के साथ आदित्य ऐसी उपाधि न लगाई होगी अतएव

विनयादित्य राजा ही के समय में संक्षेप शारीरिक बना होगा परन्तु ऐसा होना कुछ नितान्त आवश्यक नहीं प्रतीत होता। यदि प्रथम राजा ही ने आदित्य की उपाधि को धारण कर लिया हो और उसी के समय में संक्षेप शारीरिक ग्रन्थ बना हो तो ऐसा भी असम्भव नहीं है। परन्तु यदि विनयादित्य ही के समय में यह ग्रन्थ लिखा गया स्वीकार किया जावे तथापि पूर्व मत से कुछ बहुत भेद नहीं पड़ता। विनयादित्य राजा ही के समय में विरचित स्वीकार करने से यही सिद्ध होता है कि यह ग्रन्थ खोष्टीय ७ वीं शताब्दी के पिछले भाग में बना। जब स्वामी शङ्कराचार्य जी के समकालीन मनुष्य के शिष्य ने खीष्टीय ७ वीं शताब्दी के पिछले भाग में यह ग्रन्थ रचा तो स्वामी शङ्कराचार्य जी उससे भी पूर्व रहे होंगे। यदि संक्षेप शारीरिक के रचयिता सर्वज्ञ मुनि सुरेश्वराचार्य जी को शिष्य भी स्वीकार किया जावे तो शङ्कर भाष्य के अनुसार संक्षेप शारीरिक ग्रन्थ लिखे जाने के कारण अवश्य ही स्वामी शङ्कराचार्य जी से पीछे का निर्मित सिद्ध होता है। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने स्वरचित ब्रह्मसूत्र भाष्य में बलवर्मा राजा का नामोल्लेख बहुधा किया है और इसी प्रकार से जयसिंह कृष्णगुप्त और पूर्णवर्मा का उल्लेख भी है। इनमें से राजा कृष्णगुप्त कौनसा है तिसका तो ठीक ठीक पता नहीं लगता परन्तु बलवर्मा तो पंजाब देश का अधिकारी ही है ऐसा निश्चित होता है। कनिङ्हम महाशय ने मेरुवर्मा नामक पंजाब के किसी एक राजा का नाम पंजाब के शिलालेखों में पाया है जिसका समय वे खीष्टीय आठवीं और नवीं शताब्दी के बीच का अनुमान करते हैं। यह मेरुवर्मा अपने लेख में

ज को दिवाकर वर्मा का पुत्र और बलवर्मा का पौत्र बतलाता है। मेरुवर्मा का पितामह बलवर्मा प्राय: उससे सौ वर्ष पूर्व का व्यक्ति होगा अतएव बलवर्मा का समय खीष्टीय सातवीं शताब्दी में स्वीकार किया जा सकता है। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने इसी बलवर्मा का उल्लेख अपने रचित ब्रह्मसूत्र भाष्य में किया होगा। पंजाब, मालवा और गुजरात आदि का यथार्थ स्थान तथा उनके पथ का उल्लेख स्वामी शंकराचार्य जी ने अपने ग्रन्थ में इस भांति से किया है कि जिससे स्पष्ट है कि वे अवश्य पंजाब देश में कुछ काल तक निवास किये होंगे। कान्यकुब्ज देश के राजा हर्ष वर्द्धन और चीनीयात्री प्रसिद्ध ह्वान्त्साङ्ग के समकालीन दक्षिणी चालुक्य राजा पुलिकेशी खीष्टीय सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ के व्यक्ति माने जाते हैं उसके द्वितीय पुत्र विक्रमादित्य ने भी दक्षिण देश में राज्य किया था। इसी विक्रमादित्य ने अपने छोटे भाई जयसिंह को मालवा और गुजरात का राज्य अर्पण किया था अतएव हो न हो यही जयसिंह पञ्जाब के राजा बलवर्मा का समकालीन है। उन दिनों उत्तरीय भारतवर्ष में थानेश्वर के राजवंश का राजकुमार हर्षवर्द्धन कन्नौज नगर को अपनी राजधानी बना के उत्तरी भारत का चक्रवर्ती राजा बन गया था। हर्षवर्द्धन की मृत्यु के पीछे फिर कोई प्रबल चक्रवर्ती राजा उत्तरीय भारत में नहीं रह गया। भिन्न भिन्न स्थानों में छोटे २ कतिपय अधिकारी स्वतन्त्र होगये। कृष्णगुप्त इन्हीं अधिकारियों में से कोई एक रहा होगा परन्तु उसका ठीक २ पता नहीं चलता है। हर्षवर्द्धन और उसके जेठे भाई राज्य वर्द्धन का समकालीन शशांकवा नरेन्द्र गुप्त नामक

कर्ण सुवर्ण का कोई बंगाली राजा था जिसने बुद्ध गया के पवित्र पीपल के वृक्ष को काट डालने की चेष्टा की थी और पश्चिमी मगध के राजा पूर्णवर्मा ने उसकी रक्षा भी की थी प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग ऐसा लिख गया है। इससे निश्चय होता है कि चीनी यात्री से कुछ ही दिन पहिले का व्यक्ति मगध का राजा वही पूर्णवर्मा है कि जिसका उल्लेख स्वामी शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थों में किया है। बलवर्मा, जयसिंह और पूर्णवर्मा आदि राजाओं का नामोल्लेख शंकराचार्य स्वामी के लिखे ग्रन्थों में होने और इन राजाओं के समय का मिलान करने से स्पष्ट रूप से निश्चित होता है कि संक्षेप शारीरिक के निर्माण से पूर्व और सन् ६५० ई० के लगभग स्वामी शंकराचार्य जी का प्रादुर्भाव काल है।

अध्यापक मैक्समुलर, मैकडोनेल, इत्यादि पाश्चात्य विद्वानों ने तथा अध्यापक श्री राजाराम शास्त्री आदि कतिपय भारतीय विद्वज्जनों ने भी शङ्करमन्दार सौरभ और आर्यविद्यासुधाकर आदि ग्रन्थों का प्रामान्य स्वीकार करके स्वामी शङ्कराचार्य जी का जन्म सन् ७८८ ई० ही स्वीकार किया है और बङ्गदेशीय प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य तथा पन्डितवर हर प्रसाद शास्त्री आदि ने भी स्वामी जी का जन्मकाल यही सन् ७८८ ई० मान लिया है। भट्टाचार्य महाशय ने तो लेखा यों लगाया है—

गद्य वल्लरी नामक ग्रन्थ से पता चलता है कि सन् १५१३ ई० तक स्वामी शङ्कराचार्य जी के शिष्य परम्परा में चौबीस पीढ़ियाँ बीत गई थीं। यदि संन्यासियों की जीवनावस्था ग्रहस्थों की अपेक्षा दीर्घ अनुमान करके प्रतिपीढ़ी ३० वर्ष का

लेखा रक्खें तो चौबीस का तीस गुना सातसौ बीस वर्ष होता है अर्थात सन् १५१३ ई० में से ७२० घटा देने से सन् ७९३ ई० स्वामी शङ्कराचार्य जी के प्रादुर्भाव का काल निकलता है। यह समय सन् ७८८ ई० के लगभग पड़ने से निर्णय हुआ कि स्वामी जी का जन्म सन् ६८८ ई० ही में हुआ होगा।

ऊपर कही हुई रीति से भिन्न २ विद्वान् व्यक्तियों ने अपनी २ पहुंच और कल्पना के अनुसार जो स्वामी शङ्कराचार्य जी के प्रादुर्भाव काल के विषय में अपने मत प्रकट किये हैं उनका उल्लेख हो चुका इनमें से किस की कल्पना ठीक और किसका मत अशुद्ध जँचता है यह निर्णय करना साहस मात्र है। वास्तव में कहते नहीं बनता कि कौनसा मत ठीक है। हाँ फिर भी इतना कह सकते हैं कि जितनी युक्तियां विद्वज्जनों ने भिड़ाई हैं वे प्रायः सभी अपूर्ण जँचती हैं। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने स्वयं अपने ग्रन्थ में अपने समय के संवत् आदि का कुछ उल्लेख किया ही नहीं है न किसी और प्रमाणिक साम्प्रदायिक व्यक्ति ही ने निश्चित रीति से उनके समय को लिखा है। शङ्करमन्दार सौरभ, आर्यविद्यासुधाकर, केरलोत्पत्ति वा शृङ्गेरी मठादि की प्रचलित दन्तकथा पर ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वास ही नहीं किया जा सकता न स्वामी जी के समकालीन किसी राजा वा देश-विभाग से सम्बद्ध समय विशेष की निश्चायिका कोई घटना ही सुन पड़ती है कि जिससे स्वामी जी के प्रादुर्भाव काल का पूर्णतया निर्णय होवे। ऐसी दशा में हम लोगों को भिन्न २ विद्वानों का मत सुन के ही सन्तोष करना चाहिये। वास्तव में हम लोगों की इष्ट सिद्ध आम खाने से होती है पेड़ गिनने से नहीं।

स्वामी शङ्कराचार्य चाहे किसी समय में रहे हों उनके रचित ग्रन्थों और सिद्धान्तों द्वारा हम लोगों को उपदेश ग्रहण करने में किसी प्रकार की बाधा उनके यथार्थ समय के निरूपण न होने से नहीं है ।

स्वामी शंकराचार्य

पहिला अध्याय

बाल्यावस्था

मद्रास प्रदेश के मलाबार प्रान्त में कोचीन शोरानूर रेलवे लाइन पर अलवाई नाम का एक स्टेशन है इससे छः मील पूर्व की ओर 'कालदी' नामक एक छोटा सा अप्रसिद्ध ग्राम है। लोग इसी को भगवत्पाद शङ्कराचार्यजी की जन्मभूमि बतलाते हैं। इस गांव में प्राचीन काल से सुशिक्षित ब्राह्मणों की बस्ती रहती चली आई है। इसी के पास त्रिचूर में नाम्बुदरी नामक ब्राह्मण वंश अब लों निवास कर रहा है। लोग इसी कुल को स्वामी शङ्कराचार्य जी का मातृकुल बताते हैं। हिमालय पर्वत पर शङ्कराचार्य जी का स्थापित जो बद्रीनाथ जी का मन्दिर है वहाँ के पुजारी लोग अब तक इसी नाम्बुदरी वंश के ब्राह्मण ही रहते आये हैं।

कालदी ग्राम में ब्राह्मणों की यह बसती बहुत प्राचीन काल से चली आती है सुनने में आता है कि तत्स्थानीय राजा राजशेखर को भगवान् महादेव जी ने स्वप्न दिया कि उसके राज्य में एक प्रस्तर की मूर्त्ति में लिङ्ग स्वरूप शिव जी प्रकट हुए हैं। जिस स्थान पर लिङ्ग प्रकट हुआ वहाँ पर राजा

ने एक मन्दिर बनवा के उसकी सेवार्थ एक उपयुक्त और विद्वान ब्राह्मण नियत किया। इस ब्राह्मण का नाम विद्याधिराज था। कुछ लोग राजशेखर और विद्याधिराज को केवल उपनाम वाचक शब्द समझते हैं और कल्पना करते हैं कि इन लोगों के व्यक्तिवाचक नाम कुछ और रहे होंगे। विद्याधिराज के केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका कि नाम शिवगुरु रक्खा गया था।

शिवगुरु बचपन ही से परम चतुर और विद्वान थे। इस बालक का यथा समय यज्ञोपवीत संस्कार किया गया और वे विद्याभ्यास के लिये गुरु गृह में प्रेषित हुए। शिवगुरु जी बड़ी श्रद्धा और भक्ति से गुरुसेवा तथा देव पूजनादि की क्रिया किया करते और नियम पूर्वक वेदाध्ययन में भी भली भाँति चित्त लगाते थे थोड़े दिनों में शिवगुरु विद्यार्थी ने छओ अङ्गों समेत वेदाध्ययन समाप्त किया उनके गुरु ने उन्हें विद्याभ्यास और शास्त्राध्ययन में निपुण देख पिता के घर को लौट जाने की अनुमति दी परन्तु शिवगुरु के चित्त में बैराग्य उत्पन्न हो गया था वे घर पर लौट के गृहस्थ बनना नहीं चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि गुरु-गृह में रहके और कुछ दिनों तक गुरूजी की सेवा करूं पीछे से नैष्ठिक ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करूँ।

परन्तु शिवगुरु के पिता विद्याधिराज उनके गुरु के यहाँ इस अभिप्राय से आये कि अब मेरा पुत्र शास्त्राध्ययन कर चुका है उसे घर लौटा ले चलूं। विद्याधिराज ने शिवगुरु के गुरु को बहुत कुछ धन समर्पण किया और प्रार्थना की कि अब वे अपने शिष्य को घर लौट जाने की आज्ञा देवें। गुरु ने

शिष्य को अनेक प्रकार से समझाया और पिता के साथ उन्हें घर लौटने की सम्मति दे दी तथा यथोचित रीति से गुरु का अभिवादन करके शिष्य घर की ओर लौटा। शिवगुरु ने घर पर लौट आके माता जी के चरण छुए माता ने बड़े प्रेम से उन्हें छाती से लगा लिया। घर पर आके पिता ने अनेक प्रश्नों द्वारा अपने पुत्र के शास्त्र परिचय की जाँच की और उसकी तीव्र बुद्धि, अनुपम प्रतिभा तथा सर्व शास्त्रों में यथेष्ट व्युत्पत्ति देख परम चकित और आनन्दित हुए।

यथोचित रीति से विद्याध्ययन कर चुकने के अनन्तर शिवगुरु जी के विवाह का अवसर उपस्थित हुआ। कतिपय धनी ब्राह्मणों ने अपनी कुमारी कन्याओं का पाणिग्रहण इस योग्य व्यक्ति द्वारा कराना चाहा और विद्याधिराज को बहुत कुछ यौतुक देने की वाचा दी परन्तु विद्याधिराज एक विद्वान व्यक्ति थे उन्हें धन की कुछ लालसा न थी। प्रायः धन की लालसा मूर्खों ही के चित्त में रहा करती है विद्वान लोग तो भली भाँति समझते हैं कि धन संसार में कष्ट और विपत्ति का मूल कारण है। इसके कमाने, जोड़ने, जोड़ के रखने और व्ययादि प्रत्येक कार्य में दुःख ही दुःख भरा हुआ है। इसका अर्जन यदि किसी दशा में श्लाघ्य है तो परोपकरार्थ दान इत्यादि कर्मों में लगाने के लिये। भोगविलास के लिये धन संग्रह बड़ी मूर्खता है। निदान मघ नाम किसी कुलीन पंडित ने शिवगुरु से अपनी कुमारी कन्या का विवाह स्थिर किया। विद्याधिराज ने यह विवाह सम्बन्ध स्वीकार कर लिया और मघ पंडित को इस बात के लिये बाध्य किया कि वे अपनी कन्या को विद्याधिराज ही के घर में लाके शिवगुरु से उसका

पाणिग्रहण करावें। यद्यपि शिवगुरु जी का चित्त निरन्तर विद्याभ्यास से निर्मल हो गया था वे वैराग्य के इच्छुक थे और उन्हें गृहस्थी करने की उत्कंठा नहीं थी तथापि पिता जी की आज्ञा को शिरोधार्य करके उन्होंने मघ पंडित की कन्या महादेवी के साथ विवाह कर लिया और गृहस्थ बन करके अपने संसारिक जीवन का निर्वाह करने लगे।

महादेवी* जी भी एक परम विदुषी महिला थीं पति प्रेम और पातिव्रत धर्म में उनकी विलक्षण और असाधारण रुचि थी दोनों दम्पत्ति परम सुशील और धर्मात्मा थे। विवाह के अनन्तर अपेक्षा से अधिक समय व्यतीत होने पर भी इस ब्राह्मण दम्पति के कोई सन्तान नहीं हुई इसी कारण दोनों जनों के मानस कुछ खिन्न भी हो जाते थे। लोग कहते हैं कि शिवगुरु और महादेवी के सदाचार से प्रसन्न होके अन्त में शिव और पार्वती जी ने उन्हें पुत्रोत्पत्ति का आशीर्वाद दिया निदान विक्रम सम्वत् ८४५ की वैशाख शुक्ला दशमी के दिन कालदी ग्राम निवासी ब्राह्मण श्रेष्ठ शिवगुरु जी की धर्मपत्नी महादेवी ने एक पुत्र प्रसव किया जिसे देख माता पिता मारे हर्ष के फूले नहीं समाते थे। शिवगुरु ने अपने पुत्र को श्री महादेव जी के अनुग्रह द्वारा उपलब्ध समझ उसका नाम शङ्कर रख दिया। यही बालक पीछे से संसार भर में विख्यात

---

*इनका शुभ नाम अन्य और अधिक माननीय ग्रन्थकारों ने 'आर्याम्बा' दिया है। इनके 'परम विदुषी' होने में हमें इसलिये संशय है कि जब श्री शङ्कराचार्य जी ने इन्हें वेदान्त विषय को सरल करके समझाने का प्रयत्न किया तो वे कृतकार्य न हुए, निदान लाचार होकर उन्हें शिव और विष्णु के स्तोत्र सुना कर ही सन्तोष करना पड़ा—सं०।

स्वामी शङ्कराचार्य हुए। माता पिता ने यथोचित रीति से बालक का पालन पोषण किया और उसने बचपन ही से अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय माता पिता को देना प्रारम्भ किया। जब शङ्कर स्वामी केवल तीन ही वर्ष की अवस्था के थे उनके पिता शिवगुरु जी का देहान्त हो गया *। शङ्कर के पालन पोषण का पूरा भार अकेले उनकी माता महादेवी के शिर पर पड़ा। नन्हा बच्चा माता के दुःख में धीरज और ढाढ़स देता हुआ उनकी आँखों का तारा बन गया। माता अपने बच्चे का लाड़ प्यार करने और उसे खिलाने में निरन्तर मग्न रहती हुई अपने वैधव्य काल को काटने लगी। बच्चे के अनुपम व्यवहारों से उसका चित्त अतिशय प्रसन्न रहा करता था। शङ्कर जी का शरीर भी अत्यन्त स्वरूपवान था माता की इच्छा नहीं होती थी कि थोड़े से समय के लिये भी उसके परित्याग का साहस कर सके। धीरे २ बालक की अवस्था पाँच वर्ष की हुई। अब माता ने इस समय को उसके यज्ञोपवीत के लिये उपयुक्त समझा। इसी पाँच वर्ष की अवस्था में बालक शंकर का यज्ञोपवीत नाम संस्कार यथोचित रीति से सम्पन्न हुआ। बालक विद्याभ्यास के लिये गुरुगृह जाने लगा। यह अवस्था बालक के ब्रह्मचर्य धारण करने की थी। शङ्कर ने काषाय वस्त्र भी धारण किये और हाथ में दंड

---

* कृष्ण स्वामी अय्यर माधवाचार्य और चिद्विलास का आधार लेकर शङ्कर के पिता की मृत्यु सातवें वर्ष में बतलाते हैं। नारायण शास्त्री चित्सुखाचार्य के बृहच्छङ्कर दिग्विजय के प्रमाण पर आठवें वर्ष में उपरोक्त घटना रखते हैं। चित्सुखाचार्य समकालीन होने के कारण विशेष माननीय हैं—सं०।

कमंडलु ग्रहण किया। माता महादेवी की हार्दिक इच्छा थी कि विद्याभ्यास करके मेरा पुत्र संसार में अपनी विद्वता के लिये प्रसिद्ध होवे।

बालक शङ्कर की बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी अपने सहपाठियों की अपेक्षा वह बहुत शीघ्र अपने गुरु की शिक्षा ग्रहण कर लेता और सर्वथा नवीन पाठ ग्रहण के हेतु उत्सुक रहता। उसकी असाधारण प्रतिभा को देख करके गुरु जी सदा चकित रहा करते थे और परम प्रेमपूर्वक उसे विद्याध्यन कराया करते थे। शङ्कर भी अपने गुरु जी की सेवा में सदा दत्तचित्त रहा करते थे उन दिनों के गुरुओं की चाल थी कि अपने शिष्यों का अभिमान निवारण करने के लिये उन्हें भिक्षा द्वारा अन्न बटोर के लाने अर्थ ग्रामवासी गृहस्थों के द्वार पर भेजा करते थे। शंकर भी अपनी विद्यार्थिता दशा में अन्न का झोला कन्धे पर रख गुरु जी की आज्ञा के अनुसार गृहस्थों के द्वार पर जा भिक्षा माँग लाते और गुरु जी को अर्पण कर दिया करते थे। एक दिन का वृत्तान्त है कि शङ्कर अपने सहपाठियों सहित गुरु के लिये भिक्षा ग्रहण करने किसी ग्राम में जा निकले और किसी दरिद्र गृहस्थ के द्वार पर पहुंचे। यह गृहस्थ ब्राह्मण था इसकी पत्नी सुशीला और सच्चरित्रा स्त्री थी। द्वार पर भिक्षार्थ उपस्थित विद्यार्थी शङ्कर को देख ब्राह्मणी उन्हें अत्यन्त आदर पूर्वक अपने घर के भीतर ले आई और निज समीप बैठा के उनके सौभाग्य और सदाचार की प्रशंसा करने लगी। तत्पश्चात् अपनी दरिद्रता का उल्लेख करके ब्राह्मण की धर्मपत्नी बोली कि ऐसे पुण्यात्मा ब्रह्मचारी अतिथियों को यथेष्ट अन्नदान करने की मेरे चित्त में लालसा

थी परन्तु दैव के दुर्विलास से मेरे पास इस अनवसर में कुछ भी नहीं है जो आप के भिक्षापात्र में डाल दूँ ऐसा कहकर वह विप्रपत्नी अति मलीन मन हो अपनी व्याकुलता प्रकट ही कर रही थी कि उसकी दशा देखते २ बालक शङ्कर के चित्त में गृहस्थी की दुर्दशा समझ संसार की ओर से वैराग्य उत्पन्न हुआ। शङ्कर ने अपने चित्त में सोचा कि यह ग्रहस्थाश्रम अत्यन्त दुःख का निवास स्थान है जो व्यक्ति इसमें पड़ा कि वह निरन्तर नाना प्रकार की चिन्ताओं से उद्विग्न होने लगा। विवेकी पुरुष को उचित है कि जान बूझ कर कदापि ऐसे दुखदायी आश्रम में वश चलते भर प्रवेश न करे अन्यथा संसार के दुःखों से छुटकारा मिलना तो नितान्त असम्भव है। इधर शङ्कर जी के चित्त में तो इस रीति से वैराग्य उत्पन्न हो रहा था उधर ब्राह्मणी की दृष्टि निज ग्रहाङ्गण में स्थित एक आँवले के वृक्ष पर गई। दैव संयोग से एक आँवले का फल उसी समय टूट के पृथ्वी पर गिरा और ब्राह्मणी अपने चित्त में यह विचार के सन्तुष्ट हुई कि अब तो इस फल को दान करके मैं ब्रह्मचारी के भिक्षापात्र को अपने यहाँ से छूछा न फिरने दूंगी। यह विचार उस दानशीला दरिद्र ब्राह्मणी ने गृहाङ्गण में पतित उस फल को उठा के भगवान् को धन्यवाद देते हुये विद्यार्थी के भिक्षापात्र में डाल दिया। शङ्कर जी ब्राह्मणी की दी हुई उस भिक्षा को अङ्गीकार कर "तुम्हारे घर में लक्ष्मी का निवास हो" ऐसी आशीष दे वहाँ से चले आये और गार्हस्थ धर्म की ओर तभी से घृणा और वैराग्य की प्रवृत्ति उनके चित्त में स्वभावतः उदित हुई। गुरुगृह में विद्याध्ययन करते हुये थोड़े ही समय में शङ्कर ने

वेद वेदाङ्ग और उपाङ्गों का अच्छा अभ्यास कर लिया और उनमें बड़ी निपुणता भी प्राप्त करली। अभी उनकी अधिक अवस्था नहीं होने पाई थी।

एक दिन शङ्कर की माता अपने ग्राम के निकट नदी में स्नान के हेतु गईं। एक तो अवस्था अधिक दूसरे उस समय घाम भी कड़ी थी बिचारी चलते २ नितान्त क्लान्त हो के मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ीं। जब घर पहुंचने में उन्हें अपेक्षा से अधिक विलम्ब लगा तो शङ्कर के चित्त में शङ्का उत्पन्न हुई; वे शीघ्रतापूर्वक नदी के घाट की ओर दौड़े और मार्ग में माता को मूर्च्छित पड़ी देखा। बालक ने तुरन्त जल ले के माता के मुख पर छिड़का उसके ऊपर कमल के पत्तों का पङ्खा झला। सौभाग्यवश शीघ्र ही माता जी को फिर चेतना हुई शंकर जी अत्यंत सावधानता पूर्वक माता को अपने घर पर ले आये, लोग कहते हैं कि उसी समय से बालक शंकर के चित्त में यह उत्कंठा हुई कि नदी हमारे घर के समीप ही चली आवे और माता को बुढ़ापे में इतनी दूर जाने का कष्ट न उठाना पड़े। उनकी इच्छा के अनुसार जगदीश्वर ने नदी का सोता शंकर के घर के निकट ही फेर दिया उनके ऐसे अद्भुत प्रभाव को देख और लोग चकित हो गये *। शंकरजी के अलौकिक प्रभाव का

* लेखक महाशय ने यह घटना बहुत पहिले ही वर्णन करदी। अन्य स्थानों पर इसका वर्णन शङ्कर के विधिवत संन्यास लेकर उत्तराखण्ड से लौटने पर किया गया है। अभी तो पूज्यपाद शंकर ने योग में प्रवेश भी नहीं किया था कैसे वे ऐसी अमानुषिक क्रिया कर सकते थे चाहे जो कारण क्यों न हो यह स्पष्ट है कि चूर्णी नदी का नाम भविष्य में अम्बा नदी पड़ गया।

वर्णन लोगों के मुख से सुन केरल देश के तत्कालीन राजा राज-शेखर के चित्त में उनके दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हुई। राजा ने शङ्कर जी को अपने निकट बुला लाने के लिये अपना एक श्रेष्ठ मन्त्री भेजा। मन्त्री अनेक हाथियों और भांति भांति की सामग्रियों को ले शङ्कर जी के निकट उपस्थित हुआ। उसने भेंट के पदार्थ स्वामी जी के सामने रख दिये और परम विनीत तथा मधुरवाणी में कहा। महाराज राजशेखर जिनकी सभा में अनेकों विद्वान पण्डित उपस्थित हैं आपका दर्शन किया चाहते हैं अतएव उन्होंने मुझे इन भेंटों के पदार्थों समेत आपके समीप इस कारण से भेजा है कि मैं आपसे प्रार्थना करूँ कि आप अपने पवित्र चरण कमलों से राजसभा में पगुधार के राजादि सब को परम अनुग्रहीत करें। मन्त्री के ऐसे नम्रतायुत वचनों को सुन के शङ्कर ने भी अत्यन्त विनीत शब्दों में उन्हें उत्तर दे दिया कि महाशय मैं तो भीख माँग के भोजन करता और वल्कल वसन पहिनता हूं। मुझे राजा के हाथी और भांति २ के द्रव्यों का कुछ भी प्रयोजन नहीं। मुझे राजसभा में जाने की भी क्या आवश्यकता है? राजा से कह दो कि अपने प्रजा की भलाई ही में दत्त चित्त रहें यही उनका कर्त्तव्य है मुझे अपनी सभा में बुलाने से उनका कोई विशेष इष्ट साधन नहीं और न बिना मेरे गये उनका कुछ अटका है अतएव राजसभा में मेरी अनुपस्थिति को क्षमा करें। जब मन्त्री ने राजसभा में जाके शङ्कर के स्वभाव के ऐसे निस्पृहीपन को जतलाया तब राजा और भी अधिक आश्चर्य में भर गया। ऐसे योग्य व्यक्ति का दर्शन प्राप्त करने के लिये

राजा स्वयं उनके घर पर उपस्थित हुआ और वहां जा के देखा कि वह अल्पवयस्क ब्राह्मण कुमार अपने शिष्यगणों के बीच में शास्त्रादि के पठन पाठन में विशेष मनोयोग पूर्वक निरत है। राजा को देख शङ्कर ने उनका यथोचित आदर सत्कार किया और राजा उनकी भेंट तथा वार्तालाप से अतिशय प्रसन्न हुए। निदान राजाने अपने रचित संस्कृत के तीन नाटक शङ्कर को दिखाये और शङ्कर ने उन्हें पढ़ राजा की अद्भुत कविता शक्ति का परिचय पाया। इसी समय से शङ्कराचार्य तथा राजा राजशेखर में परस्पर अत्यन्त घनिष्ट मित्रता होगई।

शङ्कर के चित्त में यद्यपि वैराग्य का दृढ़भाव समा गया था तथापि अपनी माता से बिना आज्ञा पाये वे घर बार छोड़ कर सहसा संन्यासी नहीं होगये। विद्याध्ययन के अनन्तर जब शङ्कर निज माता की सेवा करते हुए घर में बास करते थे तभी इनके बिवाह की चर्चा होने लगी। माता ने चाहा कि पुत्र बिवाह करके गृहस्थी के धर्म को ग्रहण करे परन्तु शङ्कर के मन में तो संन्यास ग्रहण की उत्कण्ठा थी बिवाह होता तो कैसे? इस अवसर में लोग कहते हैं कि स्वयं अगस्त्य मुनि ही ब्राह्मण का वेष धारण करके शङ्कर की माता के पास उपस्थित हुए और बालक को देख माता से निवेदन किया कि यह बालक चिरकाल तक संसार में नहीं रहेगा। उनकी बात माता जी के चित्त में धंस गई और पुत्र की इच्छा के बिपरीत माता ने उसके बिवाह के लिये विशेष आग्रह नहीं किया। जब शङ्कर ने अपनी माता से संन्यास ग्रहण के लिये आज्ञा माँगी तब फिर भी माता ने बालक को अनेक भाँति समझाया कि देखो पुत्र बुढ़ापे में मेरी देख रेख करने वाला और कोई भी नहीं है।

तुम्हीं मुझ विधवा के एकमात्र सहारे इस वृद्धावस्था में रह गये हो यदि तुम मुझे छोड़ के चले जाओगे तो मैं किसके भरोसे अपना जीवन व्यतीत करूंगी और मेरे मरने पर कौन मेरा अन्त्येष्टि कर्म करेगा ? शङ्कर ने देखा कि अभी माता से संन्यास के लिये विदा माँगने का उपयुक्त अवसर नहीं है इस कारण उस समय चुपचाप माता के उपदेश को शिर झुका कर सुन लिया और उत्तर प्रत्युत्तर करके वाद विवाद नहीं बढ़ाया परन्तु अपने दृढ़ विचार के अनुसार संन्यास ग्रहणार्थ माता से विदा माँगने के लिये उचित अवसर की परम उत्कण्ठा पूर्वक प्रतीक्षा करते हुए मातृसेवा में दत्तचित्त रहे।

होते होते भगवान् ने शङ्कराचार्य जी को अपनी मानसिक अभिलाषा के पूर्ण करने का अवसर ला ही तो दिया। किसी दिन ये अपनी माता के साथ किसी अपनैत के घर गये थे। लौटते समय मार्ग में देखा कि जाती बेला जिस नदी को बिना प्रयास पार कर गये थे अब वह वर्षा के जल से भर पूर होगई है वर्षा थँभने और पानी का तोड़ कुछ घटने पर शङ्कर जल में माता समेत चले और जब गले तक जल में पहुंचे तब माता से कहा कि यदि तुम मुझे संन्यासी होने की अनुमति नहीं देती हो तो हम तुम दोनों यहीं बूड़ मरेंगे * और यदि संन्यास ग्रहण करने की अनुमति दे देती हो तो ईश्वर से

---

* माधवीय शङ्करदिग्विजय में कथा कुछ फेर से दी है वहां लिखा है कि शङ्कर अपनी माता के साथ चूर्णी स्नान करने गये थे। जल में उन्हें मगर ने पकड़ लिया। शङ्कर ने माता से आतुर हो संन्यास की आज्ञा माँगी और माता ने आकुल हो आपत् संन्यास की आज्ञा दे दी। संन्यास ग्रहण करते ही मगर ने पैर छोड़ दिया—सं०।

प्रार्थना करके मैं अपना और तुम्हारा दोनों का प्राण बचाऊंगा। ऐसे घोर संकट के अवसर के उपस्थित होने पर शंकराचार्य जी की माता ने विवश हो उन्हें संन्यास ग्रहण की अनुमति दे दी।

तब माता को पीठ पर बिठला के शंकराचार्य पैर कर नदी के पार जा पहुंचे और माता को घर ले गये। घर पर पहुंचने के पीछे शंकर ने अपनी माता को उस प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया जो नदी पार करते समय की गई थी। बुद्धिमती और धर्मिष्ठा माता ने कौशल्या की नाईं पुत्र प्रेम की अपेक्षा धर्मविधान को अधिक आवश्यक समझ अपनी प्रतिज्ञा पालन का स्थिर संकल्प कर लिया। माता महादेवी ने अपने एकमात्र परम प्रिय और गुणी पुत्र का चिरकाल का विछोह अंगीकार करके शंकर को संन्यास ग्रहण करने के लिये विदा किया। शंकर ने यथोचित श्रद्धा, विनय तथा लौकिक और शास्त्रीय विधिपूर्वक अपनी माता को दण्डवत् प्रणाम किया और तदनन्तर संन्यास ग्रहणार्थ वैराग्ययुक्त हो घर से वे बाहर निकल पड़े।

यथा—सच हरोद जले जलचारिणा धृतपदो ह्रियतेऽम्बकरोमि किम्।
चलितु मेकपदं न च पारये बलवता विवृतोरुमुखेनह॥ इत्यादि

दूसरा अध्याय

संन्यास

उन दिनों नर्म्मदा नदी के तीर पर पहाड़ की किसी गुफा में गोविन्द नामक कोई परम विद्वान् और वैरागी यती रहते थे। शंकर जी ने उनकी कीर्त्ति सुन पाई थी और संन्यासाश्रम में प्रवेश करने के लिये इन्हीं से दीक्षा ग्रहण करने का विचार किया था। माता जी की आज्ञा पाकर शीघ्रता पूर्वक शंकर गोविन्दाचार्य जी के समीप उपस्थित हुए। ये गोविन्दाचार्य गौड़पादाचार्य के शिष्यों में से थे और वेदान्त विद्या में असाधारण रीति से निपुण होने के कारण भारतवर्ष भर में प्रसिद्धि पा चुके थे। शंकर ने उनके समीप पहुंच के उनके चरणों की पूजा की और संन्यासाश्रम की दीक्षा ग्रहण करने के लिये अपनी अभिलाषा प्रकट की। गोविन्दाचार्य जी ने बालक की अल्पावस्था विचार का करके आश्चर्य में भर के पूछा कि तुम कौन हो और इतनी थोड़ी अवस्था में संन्यास ग्रहण करने की उत्कण्ठा तुम्हारे चित्त में क्यों उत्पन्न हुई? शंकर ने अत्यन्त विनय पूर्वक हाथ जोड़ के निवेदन किया कि महाराज मैं केरलदेश के निवासी ब्राह्मण जाति के एक पण्डित शिवगुरु का पुत्र हूं। पिता जी मुझे बाल्यावस्था ही में छोड़ के चल बसे तदनन्तर मेरी माता ने मेरा पालन पोषण किया है मेरा यज्ञोपवीत हो चुका है मैंने वेदादि धर्मशास्त्रों

का अध्ययन किया है मेरे चित्त में साँसारिक विषयों के उपभोग की स्पृहा नहीं है अतएव मैं माता से आज्ञा मांग के आपकी शरण में इस अभिलाषा से उपस्थित हुआ हूं कि आप मुझे अवलम्बन दे के संन्यासाश्रम ग्रहण करा देवें तथा अपने श्रीमुख के उपदेश से मुझे ऐसा ज्ञान भी देवें जिससे कि मैं अपना तथा सम्पूर्ण संसार का उद्धार करने में समर्थ होऊँ। इस विनीत और विचार पूर्ण कोमल बचनों को सुन के गोविन्दाचार्य ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक शंकर को अपना शिष्य बना के उनका नाम शंकराचार्य रक्खा। गोविन्दाचार्य जी ने अपने गुरु श्री गौड़पादाचार्य जी से जो कुछ धर्म के सिद्धान्त सीख रक्खे थे उन्हें शंकराचार्य जी को भली भाँति समझा दिया। शंकराचार्य जी ने अपने गुरुगोविन्दाचार्य जी की सेवा में रह के वेदान्त के ग्रन्थों अर्थात् उपनिषदों और वेदव्यास* विरचित वेदान्त सूत्रों को भली भाँति पढ़ा और समझा। तदनन्तर उन्हें ब्रह्मविद्या में पूर्ण रीति से निपुण और सांसारिक विषयों के पराङ्मुख या गुरुगोविन्द ने शंकराचार्य जी को आज्ञा दी कि संस्कृत भाषा और हिन्दू धर्म के केन्द्रस्थल काशीपुरी में जाके लोगों को वेदान्त शास्त्र का

*क्या ये वही वेद व्यास हैं जिन्होंने श्रुतियों को एकत्रित कर क्रमवद्ध किया और महाभारत की रचना की? विद्वानों में इस विषय पर मतभेद है। कतिपय पण्डितों का अनुमान है कि वेदान्त सूत्रों की रचना वादरायण व्यास ने की है जो कि कृष्णद्वैपायन या वेदव्यास से भिन्न व्यक्ति थे। स्वयं शङ्कराचार्य जी ने अपने भाष्यों में यह भेद प्रकट किया है। ब्रह्म सूत्र ३। ३। ३२ और च० ४। ४। २२ पर भाष्य द्रष्टव्य है—सं०।

उपदेश कर उनके अविद्या के पर्दे को फाड़ने का यत्न करें। * शंकराचार्य जी ने गुरु की आज्ञा तुरन्त मान ली और शरद ऋतु के प्रारम्भ में जब आकाश निर्मल था गुरु से विदा ग्रहण कर काशीपुरी की ओर प्रस्थान किया। काशी में आके अपने समकालीन विद्वानों और संन्यासियों की सत्सङ्गति द्वारा भी शंकराचार्य जी ने बहुत कुछ लाभ उठाया।

काशीपुरी में निवास करके भगवत्पाद शंकराचार्य जी ने अपनी ब्रह्मविद्या का प्रचार करना प्रारम्भ किया और इनकी विद्वत्ता की कीर्त्ति देश विदेश में फैलने लगी। एक दिन सनन्दन नामक ब्राह्मण कुमार दक्षिण देश से आया और उसने स्वामी शंकराचार्य जी के शिष्य बनने की अभिलाषा प्रकट की। शंकराचार्य जी ने जब उससे पूछा कि तुम कौन हो तो उसने अपने को चोलदेश में तञ्जौर नगर के चिदम्बरम् नामक स्थान का निवासी बतलाया। प्रश्नादि के द्वारा जांच कर स्वामी जी ने शीघ्र निर्णय कर लिया कि यह वास्तविक वैरागी है और शिष्य बनने के लिये सर्वथा योग्य है। स्वामी जी ने तुरन्त उसे अपना शिष्य बना के उपदेश देना प्रारम्भ किया और उसकी भक्ति तथा श्रद्धा देख मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए। गुरु शंकराचार्य जी ने इस शिष्य का नाम पद्मपादाचार्य रक्खा और शेष शिष्यों के मध्य इन्हें अधिक प्रतिष्ठा दी। स्वामी जी के कतिपय अन्य शिष्यों को यह बात भली नहीं लगी अतएव किसी दिन जब स्वामी जी शिष्यों समेत बदरिकाश्रम में निवास करते थे उस समय पद्मपाद

* काशी जी जाने के पूर्व शङ्कर भगवान ने उत्तराखंड की यात्रा की थी जिसका वर्णन लेखक महोदय ने यहाँ पर नहीं किया—सं०

की अनुपम गुरुभक्ति का परिचय उन्होंने शेष शिष्यों को कराना चाहा। स्वामी जी नदी के पार चले गये थे और पद्म-पादाचार्य आदि सभी शिष्य नदी की दूसरी ओर रह गये दैवात् इतने में घोर जलवृष्टि होने लगी और नदी का जल बड़े वेग से उमड़ के बहने लगा। इसी अनवसर में गुरु जीने अपने सभी शिष्यों को अपने पास चले आने की आज्ञा दी। किसी शिष्य का साहस न पड़ा कि वेग से बहती हुई नदी को पार करके गुरु के समीप उपस्थित हो उनकी आज्ञा का पालन करे। पद्मपादाचार्य ही इस समय अपने गुरु की दृढ़भक्ति के कारण साहस कर अनायास ही नदी को पैर के पार कर गुरु जी के समीप तुरन्त उपस्थित हुए। उनके सहपाठियों को उनके ऐसे साहस से स्पष्ट रूप से विदित हो गया कि किस कारण से वे औरों की अपेक्षा निज गुरु की विशेष प्रतिष्ठा के भाजन बने हैं। स्वामी जी की प्रीति पद्मपादाचार्य नामक शिष्य पर धीरे धीरे बढ़ती चली गई।

वाराणसी में निवास करते समय * शिष्यों की शिक्षा के साथ ही साथ शंकराचार्य जी ने वेदान्त ग्रन्थोंपर अपने भाष्य लिखने और छोटी मोटी कविता के स्तोत्रादि बनाने प्रारम्भ किये। लोग कहते हैं कि पहले आचार्य जीने विष्णु सहस्र नाम की एक टीका भाष्यरूप में रची। तदनन्तर क्रमशः उपनिषदों, गीता और ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रचे। मनीषा पञ्चक नाम पांच श्लोक की एक छोटी सी पुस्तिका के रचने का

* वेदान्त सूत्र पर भाष्य काशी जी में लिखा गया होगा परन्तु काशी आने के पहिले ही यह भाष्य समाप्त हो गया था ऐसा चित्सुखाचार्य और आनन्दगिरि कहते हैं—सं०।

कारण इस रीति से सुन पड़ता है कि एकबार जब स्वामी जी काशी में अपने शिष्यों समेत गङ्गा स्नान से लौट रहे थे तो स्वयं महादेव जी ही चण्डाल का वेष धारण करके चार कुत्तों को साथ ले मार्ग में आके खड़े हो गये। स्वामी जी के शिष्यों ने मार्ग को रोके खड़े हुए चण्डाल को देख सशब्द पुकार के कहा कि मार्ग छोड़ के हट आओ इस पर चण्डाल वेषधारी शिवजी ने शिष्यों को छोड़ गुरु जी ही से यह पूछना प्रारम्भ किया कि आप ऐसे ब्रह्मविद्या के ज्ञाता होकर चण्डाल के स्पर्श से जो दूषण का भय करते हैं सो वास्तविक है अथवा दिखाऊँ? फिर वह चण्डाल कह चला कि आपके सिद्धान्तानुसार तो ब्राह्मण और चांडाल दोनों ही एक आत्मावाले हैं और उनमें वास्तविक भेद नहीं है फिर अभिन्न के स्पर्शमात्र से दूषण कैसा? यदि आचार्य का यह कार्य दिखाऊ है तो ऐसे सांसारिक प्रतिष्ठा लोलुप गुरु का आदर करना श्रद्धेय नहीं फिर मार्ग छोड़ के हट जाने की आज्ञा भी किसको दी जाती है? चंडाल की आत्मा का अथवा उसके जड़ शरीर को? चांडाल की ऐसी युक्ति-युक्त प्रश्नावली सुनके स्वामी शंकराचार्य जी चकित हो रहे और तत्काल ही मनीषा पञ्चक नाम श्लोकावली रच डाली जिसमें कि स्पष्ट रीति से यह कहा है कि मेरा गुरु वही है जो संसार के प्रपञ्चों को वास्तव में मिथ्या की दृष्टि से देखता है वह चाहे चाण्डाल हो अथवा द्विजाति। एक दिन नगर में शिष्यों समेत घूमते २ स्वामी शंकराचार्य जी ने किसी विद्यार्थी को व्याकरण के रटने में सविशेष परिश्रम करते देख उसको यथार्थ उपदेश देते हुये बारह श्लोकों का एक छोटा सा स्तोत्र रच डाला जिसके प्रत्येक श्लोकों के अन्त

में "भजगोविन्दं भजगोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते । प्राप्ते संनिहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे" ऐसा पद टेक रूप से फिर फिर के आता था । शंकराचार्य स्वामी कुछ दिन तक काशी में और कुछ दिन तक बदरिकाश्रम में निवास करते हुए भाष्यादि ग्रन्थों की रचना तथा शिष्यों के मध्य ब्रह्मविद्या का प्रचार और उपदेश करते समय व्यतीत करते थे और प्रबल अद्वैतवाद मत की जड़ भारतवर्ष में स्थापित करने में सब प्रकार से दत्तचित्त थे। लोग कहते हैं कि स्वयं वेदान्त सूत्रों के रचयिता भगवान् वेदव्यास जी ही उनके भाष्य को देख कई एक विषय में उनसे शास्त्रार्थ करने के लिये वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके उपस्थित हुए और लगे स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ करने । एक सप्ताह लों शास्त्रार्थ होता रहा और दोनों विद्वान् परस्पर प्रबल २ युक्तियों द्वारा एक दूसरे का सिद्धान्त मत खण्डन करते चले गये। इन दोनों उद्भट विद्वानों का शास्त्रार्थ स्वामी जी के शिष्य पद्मपादाचार्य बड़ी धीरता और गम्भीरता से सुनते रहे। अन्त में दोनों को समान कोटि के प्रबल वादी देख स्वामी जी के शिष्य से चुप न रहा गया। उसने कहा कि हे महाराज आप लोग भगवान् विष्णु और शिवजी के अवतार हैं इतना शास्त्रार्थ करके सांसारिक जीवों के चित्त को क्यों व्याकुल कर रहे हैं? अब कृपा करके यह शास्त्रार्थ समाप्त कर दीजिये। व्यासजी शङ्कराचार्य जी की प्रबल युक्तियों को सुन मनही मन परम प्रसन्न हुए और शास्त्रार्थ को रोक के उन्होंने यह प्रस्ताव स्वामी जी से किया कि अब आप भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में घूम २ के अपनी ब्रह्मविद्या का प्रचार करके लोकोपकार कीजिये। व्यास जी की आज्ञा को

स्वामी शंकराचार्य जी ने शिरोधार्य किया और लोकोपकार हित देश २ में घूम के अद्वैतवाद के प्रचार का दृढ़ संकल्प अपने चित्त में किया।

स्वामी शंकराचार्य जी का दिग्विजयार्थ देश के भिन्न २ भागों में गमन और अद्वैतवाद का प्रचार भारतवर्ष की आध्यात्मिक उन्नति के लिये एक अद्भुत उपाय था। हिन्दूमत की भिन्न २ शाखाओं के परस्पर मतभेद का भजन और सब को एक ही पन्थ में ले आने का यह उद्योग भारतवर्ष के इतिहास में एक अद्भुत घटना है। कदाचित् ही भारतवर्ष भर में अन्य किसी मत के प्रचार का कभी भी ऐसा प्रभाव पड़ा होवेगा जैसा कि भगवत्पाद शंकराचार्य जी के अनुपम और कल्याणदायी उपदेश का पड़ा। स्वामी शंकराचार्य जी के रचे वेदान्त सूत्रों के भाष्य में उस समय के सभी प्रचलित मत मतान्तरों का युक्तिपूर्वक खन्डन किया गया है। इसीसे स्पष्ट होता है कि स्वामी शंकराचार्य जी ने कैसी सावधानता और चतुराई से अपने मत की पुष्टि उस समय में शास्त्रार्थ द्वारा की होगी। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल के उद्भट पाश्चात्य विद्वान् भी स्वामी जी की प्रबल युक्तियों को देख चकित होते रहते हैं।

तीसरा अध्याय

दिग्विजयारम्भ

व्यास जी की आज्ञा के अनुसार स्वामी जी ने दिग्विजयार्थ प्रस्थान किया। तत्कालीन काशिराज रत्नसिंह जी ने बहुत चाहा कि स्वामी जी उन्हीं के नगर में निवास करके राजा तथा प्रजा को उपदेश दान करें परन्तु व्यास जी की बात मनमें धस जाने के कारण स्वामी जी राजा प्रजा को समझा बुझा के दिग्विजार्थ नगर से बाहर निकल पड़े और सबसे पहिले तीर्थराज प्रयाग में जहाँ गङ्गा और यमुना नाम पवित्र नदियोंका संगम है आनकर उपस्थित हुए * शंकराचार्य जी ने भक्ति और श्रद्धापूर्वक गंगा और यमुना नाम महानदियों के सङ्गमस्थल के पवित्र जल में स्नान किया और यहां पर उन्हें अपनी माता महादेवी का स्मरण हो आया।

उन दिनों प्रयाग में कुमारिल भट्ट नामक एक प्रसिद्ध विद्वान व्यक्ति जिसने ब्राह्मणों के सनातन धर्म की जड़ पक्की करने और बौद्धधर्म के मूलोच्छेद का बड़ा प्रयत्न किया था

---

* दूसरा कारण प्रयाग में आने का यह भी रहा होगा कि उन दिनों माघ का मेला हो रहा था और दूर दूर से विद्वज्जन आकर कल्पवास कर रहे थे। स्वामी शंकराचार्य स्वामी दयानन्द दोनों ने अपने उपदेशों द्वारा प्रयाग को वास्तव में तीर्थराज बना दिया। कुम्भ आदि सम्मिलनों का लाभ विचारणीय है—सं०।

अब अपने जीवन में आचरित पातकों के प्रायश्चित्तार्थ तुषानल में जल के आत्म समर्पण करने के लिये प्रस्तुत थे। ये कुमारिल भट्ट मीमांसक थे वेदान्ती नहीं। वैदिक कर्मकांड के प्रचार पर इन्होंने बड़ा बल दिया था। इनके आत्मसमर्पण के संकल्प का समाचार पा के स्वामी शंकराचार्य जी उनके समीप उपस्थित हुए और उन्हें स्वरचित शारीरिक भाष्य आदि ग्रन्थ दिखलाये ! * और उन पर विस्तारपूर्वक टीका लिखाने की इच्छा प्रकट की। कुमारिल भट्ट स्वामी शंकराचार्य जी की भेंट से बहुत प्रसन्न हुए और अपने आत्मघात के संकल्प का कारण वर्णन करते हुए निज जीवनी को निम्नलिखित रीति पर सुना गये।

बचपन में वेदाध्ययन के अनन्तर मुझे स्वधर्म में बड़ी रुचि उत्पन्न हुई। मैंने देखा कि भारतवर्ष के निवासी अपने अज्ञान के कारण धर्म के यथोचित पन्थ पर स्थित नहीं हैं इसका कारण निर्णय करने पर मुझे विदित हुआ कि बौद्ध तथा जैनाचार्यों के भटकाये हुए लोग यथार्थ धर्म पर श्रद्धा नहीं रखते हैं और बिना बौद्धादि नास्तिकों के ग्रन्थों का भली भांति अध्ययन किये बौद्ध आचार्यों को विवाद में परास्त करना असम्भव है।

निदान मैं एक नास्तिकाचार्य के पास बौद्धादि मतों का सिद्धान्त सीखने के लिये गया। मैं वहां पर अनेक नास्तिक विद्यार्थियों के साथ विद्याध्ययन करने लगा। किसी विद्यार्थी

* जिस समय शंकराचार्य जी पहुंचे कुमारिल भट्ट चिता पर आरोहण कर चुके थे अतः यह मानना कठिन है कि वह शंकर के ग्रन्थो का अवलोकन कर सके होंगे और विस्तार पूर्वक आत्म कहानी कह सके होंगे—सं०।

अथवा आचार्य को यह बात विदित न थी कि मैं ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। एक दिन नास्तिकाचार्य ने वेद और ब्राह्मण धर्म की बहुत अधिक निन्दा की यहाँ तक कि सुनते २ मेरा धीरज छूट गया और मैं सहपाठियों के सामने रो पड़ा। नयनों से अश्रुपात होते देख नास्तिकाचार्य तथा उनके विद्यार्थी लोग ताड़ गये कि मैं वैदिक धर्म का पक्षपाती और इतर धर्म वालों का विरोधी हूँ। अतएव उन लोगों ने मेरे मार डालने की चेष्टा की। एक दिन असावधानता की दशा में उन लोगों ने मुझे ऊँची अटारी पर से ढकेल ही दिया परन्तु वेदादि ग्रन्थों के सौभाग्य से मुझे कुछ विशेष चोट न आई हाँ एक आँख अवश्य फूट गई तबसे मैं काना हो गया। इस बीच में मैं नास्तिकों के सिद्धान्तों को भली भाँति सीख चुका था और उसी समय से मैंने भारत भूमि भर में वैदिक मत का स्थापन और बौद्ध जैन आदि नास्तिक मतों का सर्वत्र खण्डन करना प्रारम्भ किया। राज सभा में जो बौद्धादि आचार्य वाद में मुझसे परास्त होते उन्हें अपने शिष्यों समेत बौद्धादि धर्म का परित्याग करके ब्राह्मण धर्म ग्रहण करना पड़ता था और अपने प्राचीन धर्म की पुस्तकें नष्ट कर देनी पड़ती थीं। इस रीति से ब्राह्मण धर्म का प्रतिपादन करते हुए मैं राजा सुधन्वा की राज सभा में पहुँचा। वहाँ पर बौद्धों के साथ मेरा घोर वाद विवाद उपस्थित हुआ। बौद्धों ने अपना पराजय स्वीकार नहीं किया। राजा सुधन्वा ने प्रथम तो यह विचार प्रकट किया कि दोनों मत के आचार्य ऊँचे पहाड़ पर से अपने २ धर्म की दुहाई देते हुए कूद पड़ें और दोनों में से जो जीता बचे उसी का धर्म सच्चा माना जावे। मैं तो वेद के

भरोसे एकबार ऊँची अँटारी से गिर के अक्षत शरीर बच ही चुका था सो साहस कर फिर पर्वत पर से कूद कर पूर्व की नाईं अक्षत शरीर रह गया परन्तु बौद्ध आचार्य का इतना साहस न पड़ा कि ऐसी कठिन परीक्षा देवें तब राजा ने धर्म सिद्धान्त के निर्णय की एक दूसरी युक्ति निकाली। एक घड़े में कुछ भर के उसका मुख कपड़े से ढक के राजा ने राजसभा में घड़ा मँगवाया और बौद्धाचार्यों से तथा मुझसे भी प्रश्न किया कि बताओ इसके भीतर क्या है? बौद्धों ने तो बताया कि घड़े में एक सर्प है और कुछ नहीं परन्तु मैंने कहा कि इस घड़े में सर्प रूप शेष की शय्या पर शयन करने वाले भागवान् विष्णु बिराजमान हैं। राजा सुधन्वा को सहसा प्रतीति नहीं हुई कि मेरा कथन सत्य है परन्तु मेरे कथन की सत्यता की पुष्टि में उसी समय एक आकाशबाणी हुई और राजा सुधन्वा को इस बात पर विश्वास हो गया कि मेरा कथन सत्य है। उसने प्रसन्न होके तुरन्त वैदिकधर्म स्वीकार कर लिया और बौद्धादिकों को भी वैदिकधर्म अङ्गीकार करने वा अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी*। बाद में

---

* यह कथा अलौकिक सी प्रतीत होती है। इससे केवल यह ध्वनि निकलती है कि सुधन्वा के बौद्ध और जैन पण्डितोंने कुमारिल भट्ट के शास्त्रार्थ में अपना पराजय स्वीकार न किया। भट्टजी की प्रकृति तीव्र थी और वे शीघ्र ही उत्तेजित हो जाते थे अतः सम्भव है कि उन्होंने परीक्षा का प्रस्ताव कर दिया हो और कुछ कृतकार्य भी हुए हों। प्राचीन ग्रन्थों में एसे विचित्र शास्त्रार्थों के बहुत से वर्णन पड़े हैं मेरुतुङ्गाचार्य की प्रबन्ध चिन्तामणि में ऐसे स्थल द्रष्टव्य हैं—सं०।

परास्त करने के लिये मुझे अपने गुरु नास्तिकाचार्य से भी भिड़ना पड़ा और भरी सभा में उन्हें लज्जित करा के मैं गुरु-द्रोह का पातकी बना। ब्राह्मणों के वैदिकधर्म के प्रतिपादन करने में मैंने कर्मकाण्ड का ऐसा प्रतिपादन किया कि संसार के जनक परम पूज्य परमेश्वर ही की सिद्धि से हाथ धो बैठा। निदान गुरुद्रोही होने और ईश्वर सिद्धि को अप्रमाणिक कहने के कारण मैं समझता हूं कि मैंने हठात् दो बड़े २ पाप कर डाले और जब तक कि मैं तुषानल में जल के आत्मघात न कर लूँगा वैदिक धर्म के अनुसार मैं स्वयं अपने प्रतिपादित धर्म के अनुसार आचरण कर्त्ता न माना जाऊँगा। अब मुझे अवसर नहीं है कि मैं आप के साथ गम्भीर विचार करके धर्मतत्व का निर्णय करूँ अतएव आप मुझे तो क्षमा कीजिये परन्तु माहिष्मती पुरी* (नर्मदा के किनारे आधुनिक महेश्वर) में मेरे भगिनीपति मण्डन मिश्र रहते हैं वे बड़े प्रौढ़ विद्वान और मीमांसक मत के अनुयायी हैं मेरी भगिनी अर्थात् मण्डन मिश्रजी की धर्मपत्नी भारती जिन्हें लोग सरस्वती का अवतार मानते हैं सो भी बड़ी विदुषी हैं। मण्डन मिश्र को धर्म का सिद्धान्त सिखला के आप उनके द्वारा अपने शारीरिक भाष्य को टीका बनवा सकते हैं इस प्रकार कथन करके प्रयाग-क्षेत्र में स्वामी शंकराचार्य जी के समक्ष कुमारिल भट्ट तुषानल में प्रवेश कर इस संसार से सदा के लिये बिदा हुए।

---

* माहिष्मतीपुरी का स्थान कुछ बिवाद ग्रस्त है। यद्यपि लेखक महाशय का नर्मदा के किनारे महेश्वर का संकेत करना ठीक हैं परन्तु क्या एक यही माहिष्मती भारतवर्ष में थी ? नर्मदा के निकट वाले स्थान को शिशुपाल की राजधानी भी कहते हैं ?

कुछ लोग कहते हैं कि कुमारिल भट्ट आसाम देश के निवासी ब्राह्मण थे औरों का कथन है कि वे दाक्षिणात्य थे। इन्हीं आचार्य ने जैमिनि कृति मीमाँसा शास्त्र पर लिखे गये शबर भाष्य की तन्त्रवार्त्तिक नाम टीका लिखी है और आश्वलायन गृह्य सूत्र पर भी एक टीका लिखी। इनके शिष्यों में से एक प्रभाकर नाम पण्डित बड़े प्रसिद्ध विद्वान हुये जिनको अपनी विद्वत्ता के कारण गुरु की उपाधि मिली। लोग कहते हैं कि शिष्यता की दशा में ही प्रभाकर अपनी प्रबल युक्तियों द्वारा ऐसे २ वाद विवाद उठाया करते थे कि गुरु कुमारिल समेत सभी विद्यार्थी परास्त हो जाते थे। उनकी युक्तियों से प्रसन्न होके कुमारिल भट्ट ने स्वयं उन्हें गुरु की उपाधि दी। प्राचीन पुस्तकों में पूर्व मीमांसा शास्त्र के आचार्यों में भट्टपाद और गुरु इन नाम के आचार्यों के मत बहुधा उठाये गये हैं वहाँ पर भट्टपाद से तात्पर्य कुमारिल से और गुरु से तात्पर्य प्रभाकर से है। एक बार किसी मृतक की श्राद्ध क्रिया के विषय में भट्ट और प्रभाकर में परस्पर वाद विवाद हो पड़ा प्रभाकर की प्रवल युक्ति के आगे कुमारिल की युक्तियाँ ठहर न सकीं। अन्त में कुमारिल ने अपना पक्ष स्थापन करने के लिये स्वयं मृतक बन जाने का मिष किया। शिष्यों ने जब भट्ट की अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिये प्रभाकर से संमति पूछी तब उसने यही कहा कि क्रिया तो भट्ट जी ही के निर्देशानुसार होनी चाहिये मैंने तो वाद विवाद के लिये युक्तियाँ दी थीं पर वास्तव में भट्ट-पाद ही का मत अभ्रान्त है। इस वाद को सुन के कुमारिल जी उठ बैठे और बोले कि मैं तो जीत गया क्योंकि प्रभाकर ने मेरे मत की समीचीनता स्वीकार करली है। प्रभाकर ने उत्तर

दिया 'हाँ महाराज आपने मुझे जीता तो अवश्य पर जीते जी नहीं किन्तु मर के"। भारतवर्ष देश में बौद्धादि नास्तिक धर्मों के विनाशार्थ जिन विद्वानों ने बड़ा उद्योग किया उनके बीच कुमारिल भट्ट ने सब से पहिले प्रसिद्धि पाई। कुमारिल भट्ट की भेंट वास्तव में स्वामी शंकराचार्य से हुई थी अथवा इस सम्बन्ध की कथाएं निरी कल्पना हैं इसका निर्णय कठिन है। इस विषय में लोगों में परस्पर मत भेद भी है। कुछ लोग कुमारिल भट्ट को शंकराचार्य के प्रादुर्भाव से बहुत पहिले का व्यक्ति कल्पना करते हैं उनके मत में ऊपर का इतिहास अप्रामाणिक है। जो कुछ हो स्वामी शंकराचार्य जी प्रयाग से चल के माहिष्मती नगरी में मंडन मिश्र के यहां जा पहुंचे। *

आतिथ्य सत्कार † किये जाने के अनन्तर स्वामी शंकराचार्य जी ने मंडन जी मिश्र से निवेदन किया कि कुमारिल भट्ट जी की आज्ञा से मैं आप से शास्त्रार्थ करने के लिये यहां पर उपस्थित हुआ हूँ आप कृपा पूर्वक मेरे साथ शास्त्रार्थ कीजिये। यदि वाद विवाद में आप विजयी हुये तो मैं अपना सिद्धान्त त्याग के आपका शिष्य बन ग्रहस्थ हो जाऊंगा और यदि मैं विजयी हुआ तो आप को मेरा मत स्वीकार करके संन्यास

---

* कृष्ण स्वामी अय्यर आनन्द गिरि के आधार पर कहते हैं कि मण्डन मिश्र से शंकराचार्य ने हस्तिनापुर के दक्षिण-'पूर्व विजिल विन्दु' में भेंट की क्योंकि मंडन मिश्र उस समय वहीं पर थे। पृ० ३४—स०।

† सहसा शंकराचार्य जी के पहुचने पर मंडन मिश्र और उनमें जो वार्तालाप हुआ जिसका वर्णन माधव ने किया है उससे प्रतीत होता है कि दोनों में कटु युक्तियां हुईं। परन्तु माधव का वर्णन संशय रहित नहीं जान पड़ता। अस्तु।—स०।

ग्रहण करना और मेरा शिष्य बनना पड़ेगा। मण्डन मिश्र की विदुषी धर्मपत्नी भारती ही इस विवाद के समय में मध्यस्थ बनाई गई और मण्डन मिश्र ने कई दिन तक अपनी स्त्री के समक्ष शंकराचार्य जी के साथ वाद विवाद किया। अन्त में शंकराचार्य जी की प्रबल युक्तियों के सामने मण्डन मिश्र अपने सिद्धान्त को संभाल नहीं सके और भारती ही ने स्पष्ट रीति से यह बात निर्णय करके कही कि स्वामी शंकराचार्य विजयी हुए और मेरे पति परास्त होगये।

तदनन्तर स्वयं भारती देवी ने भी यह कहा कि मैं तो मिश्र जी की धर्मपत्नी और उनकी अर्द्धाङ्गी हूं मुझे वाद में बिना परास्त किये आप विजयी न समझे जावेंगे अतएव शास्त्र के सिद्धान्त विषय में आप मुझ से भी वाद विवाद कीजिये मेरे परास्त होने पर आप पूर्णतया विजयी समझे जावेंगे। स्वामी जी ने स्त्री के साथ वाद विवाद करना अनुचित समझा परन्तु भारती के बड़ा हठ करने तथा गार्गी और सुलभा का याज्ञवल्क्य और जनक के साथ शास्त्रार्थ का उल्लेख किये जाने पर शंकराचार्य जी को उनके साथ शास्त्रार्थ के लिये बाध्य होना पड़ा। निदान कई दिन तक भारती और स्वामी जी में परस्पर शास्त्रार्थ हुआ अन्त में भारती ने अपने को परास्त होते देख और स्वामी जी को बालब्रह्मचारी अनुमान कर उनके साथ काम शास्त्र विषयक विवाद उनके परास्त करने की लालसा से छेड़ा। लोग कहते हैं कि इस अवसर पर स्वामी शंकराचार्य जी ने परकाय प्रवेश विद्या के द्वारा अमरु नामक किसी मृत राजा की रानियों से काम शास्त्र भी सीख लिया और शास्त्रार्थ में यथावसर भारती को भी परास्त

किया। मण्डन मिश्र ने शंकराचार्य के शिष्य बन के संन्यास ग्रहण किया और स्वामी जी ने पद्मपाद की नाईं उन्हें भी अपना शिष्य बनाके सुरेश्वराचार्य नाम रक्खा।

मण्डन मिश्र जी की धर्मपत्नी भी संन्यासिनी होगईं और जहाँ २ उनके पति जाते वहाँ २ उनके साथ रहतीं। धर्म विषयक बातें सुन के उनका चित्त परम प्रफुल्लित रहता। जब स्वामी शंकराचार्य जी ने शृंगगिरि में मठ बनवा दिया तो इन्हों मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी भारती के लिये भी एक स्वतन्त्र मन्दिर भी बनवा दिया जो कि अब तक सरस्वती मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। निश्चय इस स्त्री व्यक्ति ने भी अपनी विद्वत्ता के कारण शंकराचार्य जी को स्वमत प्रचार में बहुत कुछ सहायता दी होगी तब तो स्वामी जी ने इस भारती को इतना अधिक आदर पात्र बनाया। प्रारम्भ में बौद्धों के नियमानुसार स्त्रियाँ भी भिक्षु-संघ में भरती की जा सकती थीं यद्यपि ब्राह्मणों के धर्मशास्त्र में स्त्रियों का संन्यास ग्रहण कलियुग में निषिद्ध है तथापि भारती की असाधारण बुद्धि गुणावली और विद्यादि के कारण कुछ समय तक उन्हें संन्यासियों के बीच ग्रहण करना स्वामी जी ने अस्वीकार न किया होगा।

मण्डन मिश्र के परास्त होने पर माहिष्मती पुरी के राजा तथा उसके अनुयायी सभासदों पर भी शंकराचार्य जी के उपदेश का प्रभाव पड़ा। शंकराचार्य ने पूर्व मीमांसा शास्त्र को अप्रामाणिक तो नहीं बतलाया किन्तु ज्ञान का अधिकारी बनने के लिये उसे चित्तशुद्धि का द्वार निर्देश करके ज्ञानमार्ग का अङ्ग ही सिद्ध किया है तथा एक ही आत्मा वा ब्रह्म को

अद्वैत सिद्ध करके अपनी प्रबल युक्तियों से बौद्धादि नास्तिकों का खण्डन करके वैदिक मत स्थापन में बड़ा कठिन परिश्रम तथा उद्योग किया।

माहिष्मती से चलकर शंकराचार्य महाराष्ट्र देश में पधारे। यहाँ भी लोगों से शास्त्रार्थ करते हुए स्वामी जी ने वैदिक मत स्थापन करने में सफलता प्राप्त की इस देश में एक प्रकार के शैव निवास करते थे जो शिवजी की* पूजा करते और साथ ही साथ कुक्कुरों का भी बड़ा आदर दिया करते थे। शंकराचार्य जी ने शास्त्रार्थ में सिद्ध किया कि कुक्कुर एक अपवित्र पशु है उनके साथ रखने की कुचाल के परित्याग का उपदेश दे के स्वामी जी ने अपने मत का भली भाँति प्रचार किया! वे शैव कुक्कुरों का साहचर्य त्याग कर शिव जी के पक्के भक्त बन गये। उन दिनों यहाँ कापालिक मत का भी एक प्रकार से अति प्रबल प्रचार था। ये लोग शिव जी की उपासना के लिये पढ़े लिखे और योग्य ब्राह्मण का शिर बलिदान करने की कुचाल में परायण थे। इन कापालिकों में से किसी एक ने एकान्त में शंकराचार्य जी के शिर को शिव जी के संमुख उपहार देने के लिये लिये काट लेना चाहा था पर दैवात् जिस समय वह कापालिक शिर काटने के अर्थ उपस्थित हुआ उस समय स्वामी जी का प्रिय शिष्य पद्मपादाचार्य निकट उपस्थित था उसने लपक के कापालिक की भुजा अपने खड्ग प्रहार से उड़ा दी और तदनन्तर उसे यमालय का अतिथि बना दिया।

स्वामी जी यहाँ से और भी अधिक दक्षिण दिशा की ओर

* 'मल्लारि' नाम से शिव की उपासना करते थे—सं०।

गये गोकर्ण तथा हरिशंकर नाम तीर्थ स्थानों की यात्रा की मूका अम्बिकाभवानी के प्रसिद्ध स्थान पर जा पहुंचे। यहाँ पर प्रभाकर नाम किसी ब्राह्मण के पुत्र को जो आरम्भ में पढ़ने लिखने में अति शिथिल था अपना शिष्य बनाया। स्वामी जी ने उसे विद्यादान किया और उसका नाम हस्तामलकाचार्य रक्खा।

तदनन्तर तुङ्गभद्रा नदी के उद्गम स्थान पर पहुंच के स्वामी शंकराचार्य जी ने सरस्वती देवी का एक मन्दिर प्रतिष्ठित किया जिसकी चर्चा ऊपर भारती की प्रतिष्ठा में लिखी जा चुकी है। इस कार्य में स्वामी जी को वहाँ के स्थानीय राजा वीरसेन से पूर्ण सहायता मिली और शृङ्गगिरि के इस मठ के अधिष्ठाता वही सुरेश्वराचार्य जी बनाये गये जो मण्डन मिश्र के नाम से प्रसिद्ध थे। दक्षिणी भारतवर्ष के प्रसिद्ध धर्म स्थानों में आज तक शृङ्गगिरि का मठ परम धनी और प्रतिष्ठित माना जाता है।

स्वामी शंकराचार्य जी ने गिरि नामक एक और भी अपना शिष्य बनाया। इस शिष्य ने तोटक छन्द में कुछ प्रार्थना के स्तोत्र रच डाले थे अतएव इनको श्री तोटकाचार्य की उपाधि दी गई। निदान इस प्रकार से पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक और तोटक ये चार प्रसिद्ध शिष्य स्वामी शंकराचार्य जी के हो गये।

शिष्यों की योग्यता देख और अपने मन में कर्ममीमांसा तथा ज्ञान मीमांसा के पूर्ण ज्ञानी समझ सुरेश्वराचार्य ही के द्वारा शंकराचार्य जी ने चाहा था कि स्वरचित शारीरिक भाष्य पर टीका लिखावें परन्तु अपने शिष्यवर्ग के अनुरोध

से स्वामी जी सुरेश्वराचार्य से केवल स्वरचित उपनिषद् भाष्यों की ही टीका लिखा सके स्वामी जी के शिष्यों ने कहा कि सुरेश्वर तो शास्त्रार्थ में हार मान के उनके मत अनुयायी बने हैं। अभी उनके मन से कर्म मीमांसा के सिद्धान्त दूर न हुए होंगे और न स्वामी जी का अद्वैत सिद्धान्त उनके चित्त में दृढ़ हुआ होगा। अतएव इस ब्रह्मसूत्र भाष्य की टीका पद्मपादाचार्य से लिखाई जावे जो चिरकाल से प्रभाकरमत को परित्याग करके स्वामीजी के शिष्य रह चुके हैं और उनसे तीन वार शारीरिक भाष्य का सिद्धान्त सुन के उसी को भली भाँति समझने में समर्थ हो गये हैं। पद्मपाद कहते थे कि शारीरिक भाष्य की टीका यदि हस्तामलक वा तोटकाचार्य (आनन्दगिरि) बनावें तो अच्छा हो। स्वामी शङ्कराचार्य जी की तो यही इच्छा थी कि यदि शारीरिक भाष्य की टीका लिखाई जावे तो सुरेश्वर ही से परन्तु अपने शिष्यों की इच्छा के विरुद्ध करना भी उन्हें इष्ट न था। निदान सुरेश्वर से तो उपनिषदों के भाष्य पर टीका लिखाई गई और पद्मपाद से शारीरिक भाष्य पर। पद्मपादाचार्य ने स्वरचित टीका में प्रभाकर मत का पूर्णतया खण्डन किया है।

पद्मपादाचार्य की इच्छा हुई कि स्वदेश में जाके वहां के विद्वानों को भी अपना यह भाष्य दिखला के प्रभाकर मत की दुर्बलता को भलीभाँति अपने स्वजनों को समझा देवें और उन्हें अद्वैतवाद की ओर प्रवण करें अतएव उसने स्वामी जी से स्वदेशयात्रा की अनुमति माँगी। गुरुजी ने आज्ञा दे दी और पद्मपादाचार्य अपने जन्मस्थान चिदम्बरम् में गये। यहाँ पर उस समय में प्रभाकर मत को स्वीकार करने वाले मीमां-

सकों की मण्डली प्रबल थी । पद्मपादाचार्य अपने मातुल के घर पर जाके ठहरे इनका मातुल प्रभाकर मत का अनुयायी था । पद्मपाद विरचित टीका में उसने प्रभाकर मत का खण्डन पढ़ पाया और अपने भाञ्जे पर अत्यन्त अप्रसन्न भी हुआ उसने अपने मन में बिचारा कि पद्मपाद को इस करतूति का फल चखावें । अतएव अवसर ढूंढ़ने लगा । असमय में पद्मपादने निज रचित शारीरिक भाष्य की टीका को अपने मामा के हाथ में सौंप दिया और रामेश्वर तीर्थ की यात्रा के लिये प्रस्थान किया । उसकी अनुपस्थिति के समय में उसके मामाने संयोग पाके वह पुस्तक आग में जला दी। जब भाञ्जा लौट के आया और उसने अपनी बहुमूल्य पुस्तक माँगी तो उसके मामाने पुस्तक के संयोग वश जल जाने का समाचार सुनाके बहुत अधिक शोक प्रकट किया ।

यह समाचार सुन के पद्मपाद का चित्त अत्यन्त दुःख से सन्तप्त हुआ परन्तु अब क्या हो सकता था। उस पुस्तक के भाग्य में इसी प्रकार से विनाश बदा था। पद्मपाद को आशा न थी और न उसका साहस ही पड़ा कि अब फिर शारीरिक भाष्य की एक दूसरी टीका तदनुरूप रच डाले। लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि नीच स्वभाव मातुल ने अपने भाञ्जे की बुद्धि मन्द कर देने के लिये उसके भोजन के पदार्थों में भी कुछ वस्तुएं मिला दी थीं। बिचारे पद्मपाद ने निराश हो के अपने गुरु शङ्कराचार्य जी के पास उपस्थित हो यह अनर्थ कथा सुनाई और अत्यन्त खेद भी प्रकट किया। स्वामी जी भी इस बात को सुन के परम दुःखी हुए परन्तु उन्होंने इस टीका के पञ्चपदिका भाग को अर्थात् शारीरिक भाष्य

के प्रथम अध्याय के चारों पादों और द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद की वही टीका पद्मपादाचार्य से फिर एक वार लिखाने का आग्रह किया । पद्मपादाचार्य ने गुरु जी की आज्ञा स्वीकार कर ली और पञ्चपदिका को फिर एकबार लिख डाला परन्तु सम्पूर्ण ग्रन्थ पर पूरा २ तिलक पहिले की नाईं फिर न लिखा गया और इस प्रकार से मत मतान्तर के विवाद के कारण पद्मपाद के उस बहुमूल्य ग्रन्थ द्वारा लाभ उठाने से संसार वञ्चित रह गया ।

चौथा अध्याय

मातृ भक्ति

प्रिय शिष्य पद्मपादाचार्य को स्वदेश यात्रा की अनुमति देने पर स्वामी शङ्कराचार्य जी के चित्त में यह विचार हुआ कि अब चलें अपनी पूज्या माता जी का दर्शन करें और यह भी देखें कि उनकी क्या अवस्था है। निदान अपने सभी शिष्य वर्गों को शृङ्गेरी मठ ही में छोड़ के भगवत्पाद स्वयं कालदी ग्राम में पहुंचे अपनी माता जी का दर्शन किया और स्नेह पूर्वक उनके चरण कमलों का स्पर्श करके उन्हें प्रतिष्ठा दी। माता जी भी अपने संन्यासी पुत्र के दर्शन से अत्यन्त प्रसन्न हुईं। उन्होंने चरण स्पर्श करने वाले पुत्र को आशीर्वाद प्रदान किया और अपनी यह इच्छा प्रकट की कि अब हमारा जीवन थोड़े ही दिनों में शेष होने वाला है अतएव मेरा प्रिय पुत्र मुझे छोड़ के अन्यत्र कहीं न जावे अन्यथा मेरे देहान्तानन्तर कौन मेरी अन्त्येष्टि क्रिया करेगा। भगवत्पाद ने माता जी की अन्तिम आज्ञा स्वीकार करली।

माता जी का शरीर क्रमशः अस्वस्थ हो चला। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र से प्रार्थना की कि परलोक में जिसके द्वारा हित सम्भव हो ऐसा कोई उपदेश मुझे दीजिये। भगवत्पाद ने अपने सिद्धान्तानुसार प्रथम तो अपनी माता को निर्गुण ब्रह्म के विषय में कुछ बातें सुनाईं परन्तु देखा कि यह कठिन

विषय माता की समझ में कुछ भी नहीं आता है तो क्रमशः ब्रह्म की सगुणमूर्ति तथा शिव और विष्णु के विशेष रूपों का वर्णन सुना के उन्हें परम सन्तुष्ट किया। प्रिय पुत्र से वर्णित भगवान विष्णुजी की मूर्ति का ध्यान करते २ भगवत्पाद की माता परलोक सिधारीं * और उनके पुत्र ने यथेष्ट विधि से उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने का विचार बाँधा। भगवत्पाद के बन्धुजनों ने उनके इस विचार पर अश्रद्धा प्रकट की और क्रोध पूर्वक बोले कि "तुम सरीखे सन्यासी को किसी प्रेत की अन्त्येष्टि क्रिया करने का अधिकार शास्त्रों में नहीं है" भगवत्पाद के अनेक भांति समझाने बुझाने पर भी बन्धुजनों ने उनकी बात एक न सुनी न मानी और अपने माता की अन्तिम क्रिया निर्वाहार्थ उन्हें अकेले और असहाय छोड़ उनके निकट से खिसक गये यहाँ तक कि उनके बारम्बार याचना करने पर भी दाह क्रिया के लिये उन्हें आग तक नहीं दी। भगवत्पाद अपने सिद्धान्त पर दृढ़ थे उन्होने बन्धुजनों के द्वारा इस कार्य में सहायता की अपेक्षा न की। लोग कहते हैं कि स्वामी जी ने मातृशव को कतिपय खण्डों में विभक्त करके निवास स्थान के पिछवाड़े की भूमि में पहुंचाया और उसी को श्मशान बना क वहीं पर शुष्क

*यद्यपि लेखक महाशय ने माता जी का देहान्त, कृष्ण स्वामी अय्यर का अनुकरण करके, शृङ्गेरी मठ के स्थापन के उपरान्त निर्धारित किया है परन्तु नारायण शास्त्री, चित्सुखाचार्य के मत का अवलम्बन करके आर्याम्बा का देहावसान शंकर की काशी यात्रा के पूर्व ही मानते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि चित्सुखाचार्य का बृहच्छंकर विजय सब से प्राचीन और माननीय है। सं०

कदली के स्तम्भों की एक चिता रची। तदनन्तर अरणी मथन द्वारा अग्नि प्रगट करके स्वामी जी ने विधिवत् अपने माता की दाह क्रिया की। सुनने में आता है कि अपने बन्धुजनों से चिढ़के वहा के राजा राजशेखर से स्वामी जी ने यह आज्ञा निकलवा दी कि "नाम्बुदरी जाति के ब्राह्मण लोग वेद न गाया करें जिसमें कि कभी भी संन्यासी लोग उनके यहां अतिथि रूप से उपस्थित न हुआ करें। उनके प्रत्येक गृह में एक कोना शवों की दाह क्रिया के लिये पृथक् छोड़ दिया जावे और दाह के पूर्व प्रत्येक शव का शरीर कपितय खन्डों में विभक्त कर दिया जाया करे" कुछ लोग कहते हैं कि भगवत्पाद शङ्कराचार्य जी ने अपने बन्धुजनों को इस प्रकार की क्रिया करने के लिये शाप दे दिया था सो जो कुछ हो अब भी नाम्बुदरी जाति के ब्राह्मणों के बीच वेद पाठ नहीं होता और न उनके यहां संन्यासी लोग अतिथि के रूप में उपस्थित होते हैं। प्रत्येक गृह में एक कोना शवों के दाहार्थ पृथक् रक्खा जाता हैं और दाह के पूर्व सब के शरीर से छुरी का स्पर्श अवश्य करा दिया जाता है।

भगवत्पाद शङ्कराचार्य जी संन्यासाश्रम ग्रहण कर चुके थे और उनको अपनी माता के अन्तिम कृत्य करने की कुछ विशेष आवश्यकता नहीं थी तथापि मातृभक्ति के कारण उन्होंने माता की आज्ञा को वश चलते भर अवश्य पूर्ण करना अपना परम कर्त्तव्य मान लिया था और यद्यपि ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुंच चुकने के कारण उन्हें अपने कर्त्तव्य आदि के भी पूर्ण करने की कुछ भी अपेक्षा न थी तथापि लोक संग्रह के हेतु उन्हें माता की अन्त्येष्टि क्रिया करनी ही पड़ी।

बात तो यह है कि भगवत्पाद के ज्ञानी हो जाने के कारण अपने कर्त्तव्य के न पालन करने का दोष चाहे उन्हें न लगता परन्तु ऐसे महात्मा यदि माता की अन्त्येष्टि क्रिया नहीं करते हैं तो फिर संसार के साधारण अज्ञानी जनों को अपने २ लौकिक कर्त्तव्य पर श्रद्धा कैसे रह जावेगी और महापुरुष के दिखलाये उदाहरण अनुसार यदि अज्ञानी जन भी अपना शास्त्र विहित कर्म छोड़ बैठेंगे तो सांसारिक मर्यादा का भी पालन कदापि न हो सकेगा। प्रत्युत अज्ञानियों को अपने कर्त्तव्य कर्म की उपेक्षा का दोष और पाप भी लगेगा अन्त में अनिष्टपात होगा। साधारण जनों को अपने आचरण द्वारा उपदेश देने ही के लिये मातृभक्ति के कारण भगवत्पाद ने उनकी अन्त्येष्टि क्रिया यथोक्त वैदिक रीति से की तथा उनकी आज्ञा और अपनी प्रतिज्ञा का पालन भी किया।

अहो! मातृ प्रेम भी संसार में एक कैसी अद्भुत वस्तु है जिसका यथार्थ रूप से वर्णन मनुष्य की शक्ति के बाहर है। संसार में जगदीश्वर ने मनुष्यमात्र को जितने सद्गुण दिये हैं उनके बीच मातृभक्ति असाधारण और अलौकिक है अन्यथा क्यों सांसारिक पदार्थों से वैराग्य रखने वाले ज्ञानाश्रय निर्गुण ब्रह्म के ज्ञाता अहङ्कारादि से पराङ्मुख धर्म कर्म के परित्यागी सच्चे संन्यासी भगवत्पाद शंकराचार्य मातृभक्ति के कारण भगवद्भजन और ज्ञानोपदेश का परित्याग कर मरणान्तर पञ्चतत्वों में विभक्त मृत्तिका के रूप में परिणित माता के शव की दाह क्रिया स्वयमेव अपने हाथ से करते और अपने बन्धुजनों के मर्मभेदी वाक्यों को सुन के भी अपने अटल सिद्धान्त से डिग न जाते। जो माता कि अब संसार

में नहीं है उसके शव की दाह क्रिया स्वामी जी करते तो क्या, और न करते तो क्या? उन्हें कोई पातक अथवा अपयश थोड़े ही लगा जाता था किन्तु यह तो संसार में जन्म ग्रहण करने के कारण जीव के उस स्वाभाविक मातृप्रेम का एक परिणाम मात्र था जिससे कि शून्य जगत् की नीच से नीच जातियां और पशु पक्षी आदिक भी नहीं हैं।

पाँचवाँ अध्याय

शेष दिग्विजय

माता की अन्त्येष्टि क्रिया करने के अनन्तर स्वामी शङ्कराचार्य जी ने फिर अपने शिष्यों को दर्शन दिया और उन्हें अपने साथ ले फिर एक बार दिग्विजयार्थ देश विदेश में भ्रमण करना प्रारम्भ किया। प्रथम स्वामी जी रामेश्वर तीर्थ की ओर गये यह वही स्थान था जहाँ पर लङ्का विजय के लिये जाते समय भगवान् रामचन्द्र जी ने भगवान् शिव जी की मुर्ति स्थापन की थी और उनका विधिवत् पूजन करके विजय लाभार्थ प्रसाद लिया था। महर्षि वाल्मीकि जी ने लङ्काकाण्ड के पिछले भाग में रामचन्द्र जी के शिव मूर्ति स्थापन और पूजन का सङ्केत किया है जिससे सिद्ध होता है कि भारतवासियों के बीच मूर्ति पूजा का प्रचार बहुत प्राचीन काल से चला आता है। * स्वामी शङ्कराचार्य जी के समय में वहाँ रामेश्वर के मन्दिर में शाक्त मत के लोगों का प्रभाव बहुत चढ़ा बढ़ा था। शक्ति के पूजक लोग उन दिनों बड़े मद्यपी और दुराचारी हो गये थे। शङ्कराचार्य जी ने वहाँ के पंडितों के साथ शास्त्रार्थ करके सिद्ध कर दिया कि उनका यह दुराचरण

---

* वाल्मीकि के लङ्काकाण्ड में मूर्तिपूजा का संकेत होना ही यह सिद्ध करता है कि मूर्त्ति पूजा बहुत प्राचीनकाल से चली आती है। इस मत की सिद्धि के लिये और अधिक प्रबल प्रमाणों की भी आवश्यकता है—सं०

शास्त्रीय विधि के नितान्त प्रतिकूल था उन पंडितों को शास्त्रीय विवाद में परास्त करके उन्हें अद्वैत वेदान्त का उपदेश दे अपने मत में कर लिया।

तदनन्तर स्वामी जी पांड्य और चोल देशों में अपने मत का प्रचार करते हुए चोल देश की राजधानी काञ्ची नगर में जा पहुंचे और वहाँ के राजा को भी उपदेश प्रदान कर अपने ही मत में दीक्षित किया। वहाँ से चल के त्रिकलिङ्ग (तिलिङ्गाना) देश में अपने मत का प्रचार करते हुए स्वामी जी उत्तर की ओर बढ़ के विदर्भ (बरार) देश में जा पहुंचे। वहाँ भैरव मत के अनुयायी बहुत से लोग थे उन लोगों को भी शास्त्रार्थ में पराजित करके अनेकों भैरव पूजक कापालिकों को स्वामी जी ने निज मत में दीक्षित किया। विदर्भ के तत्कालीन राजा ने भी स्वामी शङ्कराचार्य जी का बहुत कुछ आदर सत्कार किया। विदर्भ देश मे अपने मत का प्रचार करके आचार्य जी कर्णाट देश की ओर फिरे। इस अवसर पर राजा सुधन्वा भी सहायतार्थ उनके साथ हो लिया। उन दिनों कर्णाट देश में भी कापालिकों का प्रभाव बहुत ही अधिक था यहां पर कापालिकों का मुखिया क्रकच एक बड़ा क्रोधी और क्रूर व्यक्ति था उसने स्वामी शङ्कराचार्य जी के साथ यथारीति शास्त्रार्थ तो किया नहीं हां एक शस्त्रबद्ध सेना लेके उनपर भले चढ़ दौड़ा। राजा सुधन्वा तथा अपने और २ वीर शिष्यों की सहायता से स्वामी शङ्कराचार्य जी ने इस शस्त्रयुद्ध में भी कापालिकों को परास्त किया। उनका मुखिया क्रकच युद्ध में मारागया पीछे से शेष कापालिकों ने

स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ किया और उसमें भी जब परास्त होगए तो वे सब शङ्कराचार्य जी के शिष्य होगये। स्वामी जी के पद्मपादाचार्य आदि शिष्यों ने भी इस अवसर पर युद्ध में अपनी शारीरिक शक्ति और उपदेश तथा शास्त्रार्थ में अपनी ज्ञानशक्ति के अतिशय प्रबल होने का अच्छा परिचय दिया। कर्णाट में ब्रह्म विद्या का प्रचार करते हुए स्वामी जी पश्चिम दिशा की ओर मुड़े और गोकर्ण क्षेत्र में जा पहुंचे। यहाँ पर प्रसिद्ध विद्वान् शैवदार्शनिक नीलकंठ निवास करते थे। उन्होंने स्वामी जी के साथ शास्त्रार्थ किया और अन्त में परास्त भी हुये। निदान नीलकंठ अपने शिष्य हरिदत्त पंडित आदिकों के साथ वेदान्त मत के अनुयायी होगये। सौराष्ट्र देश में भागवतों और पञ्चरात्रों का खंडन करते हुए और बीच बीच में कहीं स्वयं कहीं अपने शिष्यों के द्वारा प्रबलतर युक्तियों से शैव, शाक्त सौर आदि मतमतान्तरों का खंडन करते कराते स्वामी शङ्कराचार्य जी अवन्ती देश की राजधानी उज्जयिनी नगरी में जा पहुंचे। वहाँ पर महाकाल शिवजी का वह प्रसिद्ध मन्दिर था जिसका उल्लेख कविवर कालिदास तथा महाकवि भवभूति आदिकों ने स्वरचित ग्रन्थों में किया है। प्रसिद्ध है कि प्राचीन महाराज विक्रमादित्य शकारि ने इस मन्दिर को बनवाया था और प्रायः सन् १२३६ ई० में मालवा विजय करते समय दिल्ली के दास वंशी मुसलमान राजा अलतमश ने इसको भग्न किया था। महाकाल शिवजी एक उग्र देवता गिने जाते हैं। मुसलमान विजेता के इस अपराध को क्षमा न करके अचिरकाल ही में महाकाल ने उस राजा को यम सदन में प्रेषित किया। इतिहास ग्रन्थों से पता

लगता है कि मालवा विजय के थोड़े दिन पीछे ही अलतमश मरा।

उज्जयिनी में पहुंच के स्वामी शङ्कराचार्य जी महाकाल ही के मन्दिर में अपने शिष्यों समेत ठहरे। यहां पर उन दिनों भट्टभास्कर नामक एक प्रसिद्ध पंडित रहते थे जिन्होंने उपनिषदों पर भाष्य लिखे थे और और भी कतिपय ग्रन्थों की रचना की थी। ये दार्शनिक भी थे और कदाचित् कवि भी रहे हों। संस्कृत में "उन्मत्तराघव" नाम एक छोटा सा प्रेक्षाणक जो कविवर भास्कर भट्ट का रचित बतलाया जाता है कदाचित् इन्हीं भट्ट भास्कर की लेखनी से निकला हो। भगवत्पाद शङ्कराचार्य जी से भट्ट भास्कर जी ने आके भेंट की। दोनों में परस्पर शास्त्रार्थ हुआ और भट्ट भास्कर को परास्त होना पड़ा। सुनते हैं कि भट्टभास्कर ने अपना परास्त होना स्वीकार नहीं किया और न शङ्कराचार्य जी का मत स्वीकार किया।

अवन्ती पुरी अर्थात् उज्जयिनी में अपने मत का प्रचार करने के अनन्तर शङ्कराचार्य जी वाल्हीक देश की ओर पधारे और तत्रस्थ पंडितों से शास्त्रार्थ किया अपनी प्रबल युक्ति की अद्भुत शक्तियों द्वारा जैन मत का भी खंडन करते हुए उन्होंने सब को परास्त किया। वाल्हीक देश से स्वामी जी नैमिषारण्य की ओर पधारे और वहां भी अपने अद्वैतवेदान्त मत के प्रचार में शिष्यगणों के समेत व्यापृत रहे। लोग कहते हैं कि गङ्गानदी के तीरस्थ प्रदेशों में घूमते समय श्री स्वामी शङ्कराचार्य जी ने दंडी, बाण मयूर आदि पंडितों को भी शास्त्रार्थ में परास्त किया परन्तु यह बात निर्णय नहीं हो सकती है कि

ये प्रसिद्ध परिडत लोग स्वामी शङ्कराचार्य जी के समकालीन थे अतएव इस घटना में सन्देह किया जा सकता है। काव्यादर्श, दशकुमार चरित आदि ग्रन्थों के रचयिता दण्डी कवि को लोगों ने खीष्टीय छठवीं शताब्दी का व्यक्ति कल्पित किया है कुछ लोग ऐसा भी अनुमान करते हैं कि वे उज्जयिनी के निवासी थे और संस्कृत का प्रसिद्ध नाटक जो मृच्छकटिक प्रकरण के नाम से विख्यात है इन्हीं की रचना है। यह भी कहना कठिन है कि दण्डी यह शब्द उपाधिमात्र है। अथवा व्यक्ति गत नाम है। यह भी सम्भव हो सकता है कि गृहस्थ न होके ये ग्रन्थकार दण्ड धारण करने के कारण दण्डी कहलाये हों। ऐसा होना भी असम्भव नहीं अनुमित होता कि किसी ऐसे दण्डधारी वैरागी ही से शङ्कराचार्य जी का शास्त्रार्थ हुआ हो जो काव्यादर्शादि के रचयिता से भिन्न कोई और व्यक्ति रहा हो।

बाणभट्ट और मयूर कवि तो अवश्य समकालीन प्रसिद्ध परिडत थे और दोनों कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध राजा हर्षवर्द्धन की राजसभा में उपस्थित थे। बाण कवि ने गद्य काव्य कादम्बरी और हर्षचरित लिखे और मयूर कवि ने सूर्यशतक की रचना की थी। हर्षचरित तथा सूर्यशतक दोनों पुस्तकों के श्लोकों को मम्मट भट्ट ने अपने रचित काव्यप्रकाश नामक ग्रन्थ में उठाया है। जान पड़ता है कि श्री मम्मट भट्ट कश्मीर देश वासी और धारा नगरी के राजा भोजदेव के समकालीन हैं उनके समय तक बाण भट्ट और मयूर भट्ट के ग्रन्थों का विशेष प्रसिद्धि पाना सर्वथा संभाव्य है। कान्यकुब्ज के राजा हर्षवर्द्धन का राज्यकाल सन् ६०६ ई० से लेके सन् ६४७ ई० तक

निर्णीत हुआ है और इसी के राज्यकाल में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग भारतवर्ष में पन्द्रह वर्ष लों अर्थात् सन् ६३० ई० से लेके ६४५ ई० तक रहा। बाण और मयूर इसी हर्षवर्द्धन के समकालीन हैं यह बात निश्चित है हर्षचरित में बाण कवि ने इसी राजा के राज्यारम्भ काल का वर्णन लिखा है परन्तु जब स्वामी शङ्कराचार्य जी का जन्म सन् ७८८ ई० में स्वीकार किया गया है तो वे बाण भट्ट और मयूर आदि कवियों के समकालीन कदापि नहीं हो सकते क्योंकि इन पंडितों और स्वामी जी के प्रादुर्भाव में लगभग २०० वर्ष का भेद पड़ता है जो बहुत ही अधिक है। हाँ यदि बाण और मयूर नाम के कोई और भी पंडित रहे हों जो हर्षवर्द्धन के सभासदों से भिन्न रहे हों और स्वामी शङ्कराचार्य जी के समकालीन भी हों तो दूसरी बात है।

नैमिषारण्य से उत्तर की ओर और भी कई एक पहाड़ी प्रदेशों में क्रमशः पदार्पण करके मथुरा आदि कतिपय भारतवर्ष के उत्तरीय नगरों में शङ्कराचार्य जी ने अपने अद्वैत वेदान्त सिद्धान्त का प्रचार किया। तदनन्तर स्वामी जी भारतवर्ष के पूर्व की ओर प्राक् ज्योतिष वा आसाम देश की राजधानी काम रूप नगरी में गये। यहाँ पर शाक्तमत के निपुण पंडित अभिनव गुप्त निवास करते थे। काश्मीर के प्रसिद्ध आलङ्कारिक ध्वन्यालोक के रचयिता आचार्य अभिनव गुप्त जिनका नाम मम्मट भट्ट ने काव्य प्रकाश में बड़े आदर के साथ लिया है इस शाक्त पंडित से अवश्य ही भिन्न कोई व्यक्ति रहे होंगे।

अभिनव गुप्त ने भी अन्यान्य पंडितों की नाईं स्वामी शङ्कराचार्य जी के साथ शास्त्रार्थ किया और परास्त भी हुए

ऐसा जान पड़ता है कि अभिनव गुप्त ने ऊपर से तो परास्त हो के शङ्कराचार्य जी का मत और उनके शिष्य बनना स्वीकार कर लिया परन्तु भीतर से तो उसने स्वामी जी से द्वेष किया होगा। यह बात प्रसिद्ध है कि इसी पंडित की क्रिया द्वारा स्वामी जी एक पीड़ादायक भगन्दर रोग से ग्रस्त हो गये जो अन्त में उनकी मृत्यु का कारण हुआ।

स्वामी जी आसाम से चल के मिथिला; नैपाल, चम्पारण्य अङ्ग और उत्तरी वङ्ग आदि देशों में अपने मत का प्रचार करते हुए गौड़ देश में भी गये और यहीं से भगन्दर रोग स्वामी जी के पीछे लगा। अनेक प्रकार की चिकित्सा तो की गई पर प्रारम्भ में रोगशान्ति के कुछ लक्षण नहीं दीख पड़े। स्वामी जी के शिष्य पद्मपादाचार्य को जब इस बात का पता लगा कि यह किसी पंडित की क्रिया के कारण स्वामी जी के पीछे रोग लग गया है तो उसने अपनी तान्त्रिक युक्ति के द्वारा उस क्रिया के शान्ति की चेष्टा की। परिणाम यह हुआ कि कुछ दिन तक स्वामी जी की पीड़ा शान्त रही और वे भले चंगे की नाईं हो गये।

काश्मीर की शारदा पीठ का दर्शन करने और वहाँ पर निज सिद्धान्त का प्रचार करने के लिये स्वामी शङ्कराचार्य जी पधारे। काश्मीर की शारदापीठ में पैठने के लिये चार फाटक थे। स्वामी शङ्कराचार्य जी दक्षिण देश के निवासी होने के कारण वहाँ वालों द्वारा दक्षिण द्वार से वे मठ में प्रविष्ट कराये गये। यहाँ पर शारदापीठ की मर्यादा के अनुसार स्वामी जी ने वैशेषिक, न्याय, सांख्य, बौद्ध, जैन और पूर्वमीमांसा आदि

शास्त्रों के विशेषज्ञ अनेक विद्वानों से उत्तर प्रत्युत्तर किया तब उन्हें शारदापीठ में जाने की आज्ञा मिली। स्वामी जी ने मन्दिर के भीतर जाके सरस्वती देवी का दर्शन किया और वहीं पर अपने अद्वैतवाद का प्रचार भी प्रारम्भ किया। काश्मीर में वेदान्त विद्या की शिक्षा और वैदिक धर्म प्रचार के लिये स्वामी जी ने बड़ी चेष्टा की। स्वामी जी ने अपने कई एक शिष्यों को काश्मीर में ठहर के धर्मोपदेश करने की आज्ञा दी और उन लोगों के लिये एक मठ भी प्रतिष्ठित किया।

स्वामी जी काश्मीर देश से बदरीनारायण जी की ओर फिरे और वहाँ से फिर केदारनाथ जी की ओर आये। यहाँ स्वामी जी का भगन्दर रोग फिर से उभड़ा और एक भयानक रूप पकड़ गया। शिष्यों को विदित हुआ कि स्वामी जी की शारीरिक दशा अच्छी नहीं है। भाँति २ के प्रयत्न किये गये पर रोग निर्मूल नहीं हो सका। मनुष्य का जीवन अविनाशी नहीं होता प्रत्येक प्राणी के जीवन मे मृत्यु ध्रुव है। निदान स्वामी शङ्कराचार्य जी के भी नश्वर शरीर के पात का समय आन पहुंचा। इस महापुरुष ने ३२ वर्ष की अवस्था अर्थात् सन् ८२० ई० में [अथवा किसी २ के मत अनुसार ३८ वर्ष की अवस्था अथवा सन् ८२६ ई० में] इस असार संसार का परित्याग किया। अधिकांश लोग स्वामी शङ्कराचार्य जी का जीवन काल केवल ३२ वर्ष ही का बतलाते हैं (यद्यपि ३८ वर्ष की आयु का होना भी असम्भव नहीं है) इस कारण सन् ८२० ई० ही में इनका देहान्त सर्ववादि सम्मत स्वीकार करना योग्य है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के जीवन चरित का भली भांति पाठ करने से विदित होता है कि वे एक बड़े शूर, वीर

निर्भय, सहिष्णु, विनीत, परिश्रमी, उद्भट विद्वान् परोपकारी और चतुर वैरागी थे। उन्होंने अपनी माता पर अपनी प्रगाढ़ भक्ति दिखलाई और अन्त समय में संन्यासी होने पर भी पुत्र सम्बन्धी लौकिक सभी कार्य निबाहे। ये सदा ब्रह्मचारी रहे और संन्यासाश्रम में ही अपना जीवन व्यतीत किया सांसारिक विषयों की ओर उनका चित्त कभी भी न गया। वे अपने नियमों और सिद्धान्तों पर अटल रहे। उनकी सङ्कल्प शक्ति भी असाधारण रीति से प्रबल थी। उनकी विद्या और अद्‌भुत तर्कशक्ति के विषय में यह कहना अत्युक्ति नहीं कि उनका खण्डन करना नितान्त असम्भव है। अपने शास्त्रार्थ से तत्कालीन सभी प्रसिद्ध विद्वान व्यक्तियों को स्वामी जी ने परास्त किया था और उनके विरचित ग्रन्थों को पढ़के आज तक पाश्चात्य विद्वान लोग मुक्तकण्ठ से यह बात स्वीकार करते हैं कि स्वामी शङ्कराचार्य जी की युक्तियाँ इतनी प्रबल हैं कि उनके आगे अन्यान्य युक्तियों का ठहरना सहज नहीं है। हिन्दुओं के धर्म और दर्शनशास्त्रों का विचारशील मनुष्य समाज में विजय इन्हीं स्वामी शङ्कराचार्य जी ही की अकाट्य युक्तियों के द्वारा प्राप्त हो सका है।

छठवां अध्याय

प्रभाव

भगवत्पाद शङ्कराचार्य जी ने अपने समय में भारतवर्ष की धार्मिक दशा को भली भाँति देख के उसके सुधार की यथोचित चेष्टा की। वैदिक धर्म मानने वालों के बीच जो अनेकों शाखाएं फूट निकली थीं उनमें परस्पर बड़ा मत भेद और विरोध था जिससे समाज को सर्वथा हानि उठानी पड़ती थी। इसी अनर्थ को मिटाने के लिये स्वामी जी ने अद्वैत वेदान्त मत का प्रचार करके परस्पर का प्रबल विरोध निवारण कर प्राय: सभी मत वालों की अच्छी २ बातें स्वीकार कर लीं और हानि कारक बातों को छोड़ दिया भली बातों के ग्रहण करने में स्वामी जी यहाँ तक बढ़े कि बौद्ध भिक्षुकों की नाईं संन्यासियों को भी वर्णाश्रम धर्म के नियमों के बन्धन से मुक्त कर लिया और सर्वतोभाव से अहिंसा का प्रतिपादन किया। अनुचित बातों के परित्याग का यत्न यहाँ तक किया कि शाक्तों, कापालिकों और वैष्णवादिकों में जो मद्यपान, नरबलि, चक्रादि द्वारा शरीराङ्कन की बुरी रीति प्रचलित थी उनका प्रबल खण्डन किया और उन्हें वेदविरुद्ध सिद्ध किया। वैदिक सिद्धान्त के अनुसार अपनी २ रुचिके अनुकूल प्रत्येक मनुष्य चाहे जिस पंथ को स्वीकार करे उसे दूसरे से विरोध रखने और अपने मत के सत्यता की हठधर्मिता वाली गीत गाने की आवश्यकता नहीं रही। बौद्धों के अनीश्वरवाद

का खंडन करके स्वामी जी ने वेद ही के प्रामान्य पर एक निर्गुण, सर्वव्यापी, चेतन, सत्, आनन्द स्वरूप, कूटस्थ, नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म (अर्थात् दृश्यमान संसार का निमित्त और उपादान दोनो कारण) सिद्ध किया। इसी ब्रह्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्तकर लेना स्वामी जी के मत में मोक्ष की प्राप्ति थी। परन्तु यह कठिन कार्य सभी व्यक्तियों से सहज में करने योग्य नहीं था। मोक्ष प्राप्ति के लिये अनेक जन्म संसिद्धि की आवश्यकता थी अतएव अपनी २ योग्यता के अनुसार सभी व्यक्ति के लिये सांसारिक कर्त्तव्य तो निर्दिष्ट थे। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने वैदिक कर्मकान्ड को मोक्ष प्राप्ति का परम्परा से सहायक द्वार स्वीकार किया। पहिले मनुष्य वैदिक कर्मकान्ड के अनुसार अपने वर्णाश्रम धर्म के नियमों का भली भाँति परिपालन करे और अपने चित्त को भी शुद्ध करले तब वह मोक्ष प्राप्ति का इच्छुक बन के वेदान्त ज्ञान का अधिकारी होगा। यह चित्त शुद्धि चाहे एक अथवा अनेक जन्म के अभ्यास द्वारा प्राप्त की जाय परन्तु बिना इस चित्त-शुद्ध के कोई भी वेदान्त ज्ञान का अधिकारी नहीं बनता। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने संन्यासधारण करने के पूर्व जब तक मनुष्य के चित्त में वैराग्य न उत्पन्न हो जावे तब तक संसार में रह के अपनी रुचि अनुसार वह अपने इष्ट वेद प्रतिपाद्य देवताओं का पूजन और भजन करे इस आचार को निर्दोष स्वीकार किया है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के मतानुयायी लोग स्मार्त्त कहलाते हैं और इन लोगों के बीच पञ्चदेव अर्थात् विष्णु, शिव, शक्ति (पार्वती जी) गणेश और सूर्य इन पाँचों में से सब की समान

भाव से पूजा प्रचलित है। इन में से किसी देव विशेष की उपासना के लिये अधिक हठ करना निष्प्रयोजन है और परस्पर द्वेष की कुछ भी आवश्यकता नहीं है।

भिन्न २ मतवालों के साथ शास्त्रार्थ करते समय स्वामी शङ्कराचार्य जी उनकी सभी बातों को मूर्खता या अशुद्ध जनित न कह के उनके स्वीकृत सिद्धान्तों को जहाँ तक श्रुति और तर्क के अनुकूल पाते थे उनका खन्डन नहीं करते थे अतएव वैदिक धर्म की किसी भी भाषा से उनका सर्वांश में विरोध नहीं था। सम्प्रदाय विशेष के अनुयायी लोगों के साथ उनका विरोध ऐसे स्थलों पर आ पड़ता था जहाँ उनके सिद्धान्त श्रुति से विपरीत होते थे। स्वामी जी अन्यान्य मतों के सिद्धान्तो के प्रतिकूल वैदिक प्रमाण वाक्यों को उद्धृत कर दिखा देते थे और श्रुतियों के आगे स्मृति, पुराणादि का प्रामाण्य कभी स्वीकार नहीं करते थे। इस कारण शास्त्रार्थ में भिन्न २ सम्प्रदाय वालों को इनसे परास्त होना पड़ता था। इनके निज के सिद्धान्त की पुष्टि के लिये अनेकों श्रुतिवाक्य मिल जाते थे और अपनी असीम तथा श्लाघ्यतर्क शक्ति द्वारा वे किसी भी विरोधी मतवाले को मौन कर देते थे। प्रायः पराजित लोग इनका मत स्वीकार कर लेते थे और इस रीति से स्वामी जी का संप्रदाय थोड़े दिनों में बहुत कुछ बढ़ने लगा यहाँ तक कि अब भारत के हिन्दू धर्म मानने वालों के बीच शङ्कराचार्य जी के मत मानने वालों की संख्या प्रति सैकड़ा पचासी के लगभग है। शङ्कराचार्य जी ने भिन्न २ संप्रदाय वालों की कुरीतियों के उठा देने में भी भरसक बहुत कुछ प्रयत्न किया। कापालिक, शाक्त और गणपति मत वालों के मद्य-

पान, नरबलि आदि अत्याचार और वैसे ही वैष्णव मत वालों का अपने शरीर में तप्त लोह द्वारा शङ्ख चक्रादि का चिन्ह लगाना इत्यादि अनेक कुरीतियों के खण्डन करने और उठा देने में स्वामी जी ने बड़ा प्रयत्न किया और यह उन्हीं के परिश्रम का फल समझना चाहिये कि अब यह कुरीतियाँ साधारण तया भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों से उठ गई हैं।

स्वामी शङ्कराचार्य जी ने अपनी जन्म भूमि में शृङ्गेरीमठ, द्वारका धाम में शारदामठ, पुरीजगन्नाथ में गोवर्द्धन मठ और बद्री केदार म ज्योतिर्मठ नियत किये। उनके चार प्रधान शिष्यों में से शृङ्गेरी मठ में तोटकाचार्य की, शारदामठ में पद्मपादाचार्य की, गोवर्द्धन मठ में हस्तामलकाचार्य की और ज्योतिर्मठ में मण्डन मिश्र की शाखा के संन्यासी लोग आज तक विद्यमान हैं। स्वामी जी के इन चार प्रसिद्ध शिष्यों द्वारा दश नामी संन्यासियों के सम्प्रदाय प्रचलित हुये। इनमें से तीर्थ और आश्रम पद्मपाद के वन और अरण्य हस्तामलक के, गिरि पर्वत और सागर मण्डन के तथा पुरी, भारती और सरस्वती तोटक के मुड़े शिष्यों की संज्ञा हुई। भगवान् व्यास जी के रचित वेदान्त सूत्र पर आज तक अनेकों भाष्य लिखे गये पर स्वामी शङ्कराचार्य विरचित शारीरिक मीमांसा भाष्य उन सबके बीच अत्युत्तम है। इसके दो कारण हैं एक तो शंकर भाष्य सब की अपेक्षा प्राचीन है दूसरे इसमें औरों की अपेक्षा विशेष गुणोत्कर्ष वर्तमान है। भगवत्पाद शंकराचार्य ने गद्य रचना की जैसी अनोखी अनूठी शैली पकड़ी है संस्कृत शास्त्रों में अन्यत्र वैसी कहीं नहीं मिलती। यदि किसी को संस्कृत में गद्य रचना के अभ्यास का अभिलाश हो तो वह

ध्यान देके शंकर ब्रह्म सूत्र भाष्य का पठन पाठन करें ऐसी सुठि, सरल तथा अनूठी रचना संस्कृत शास्त्र सागर मथन करने पर भी मिलेगी कि नहीं इसमें सन्देह है। ऐसे सुतर्क युक्ति और ज्ञान वीन इस दर्शनशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ में परिपूर्ण रीति से उत्कृष्ट और पुष्ट दृष्टि पड़ते हैं कि उनकी तुलना न्यारे किसी संस्कृत के ग्रन्थ में नहीं हो सकती है। मुमुक्षु जन इससे मोक्ष लाभ का उपाय प्राप्त करके कृतार्थ हो जावेंगे। शङ्कर ब्रह्मसूत्र भाष्य पर आनन्द गिरि विरचित टीका तथा रत्नप्रभा नाम टीका और वाचस्पति मिश्र की विरचित भामती नाम टीका लिखी गई है जिनमें से भामती नाम टीका पर वेदान्त कल्पतरु टीका और इस कल्पतरु पर भी कल्पतरु परिमल नाम टीका प्रस्तुत की गई है। शङ्कर भाष्य का महत्व इन टीकाओं से सर्वथा प्रकट है।

सातवां अध्याय

सिद्धान्त

श्री स्वामी शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता तथा उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं और कतिपयस्तोत्र ग्रन्थ भी रचडाले हैं कि जिनके कारण कवियों और ग्रन्थकारों के बीच उनका बड़ा मान है। स्वामी शंकराचार्य जी ने कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ अपने सिद्धान्त का नहीं लिखा परन्तु उनके विरचित भाष्यों और स्तोत्रों के द्वारा उनका स्वतन्त्र मत भली भांति प्रकट होता है। स्वामी जी ने अपने सिद्धान्तों को सर्वत्र तर्क ही के द्वारा सिद्ध किया है और अपने मत की पुष्टि में श्रुति को प्रमाण रूप से उद्धृत भी किया है। सांख्य और न्याय आदि दर्शनों में तर्क जितना भिड़ाया गया है उतना श्रुति का प्रामाण्य गृहीत नहीं है किंतु इसके विपरीत शंकराचार्य जी ने श्रुति को प्रमाण स्वरूप भी कहा है और तदनुकूल तर्क को भी अच्छी प्रतिष्ठा दे दी है। अतीन्द्रिय विषयों में जहां तर्क की पहुंच नहीं है वहां पर भी स्वामी जी ने श्रुति का प्रामान्य अन्ध विश्वास की नाईं नहीं किन्तु प्राचीन ऋषियों के अनुभव और कथन रूप आप्तवाक्य स्वीकार करके किया है इस में भी जहां तक तर्क का प्रवेश है स्वामी जी ने उसे भी अवश्य ग्रहण किया है। जो लोग स्वामी जी के मत को प्रच्छन्न बौद्ध-मत समझते हैं उन्हें सोचना उचित है कि वेद के प्रामान्य ग्रहण और क्षणिकवाद के खन्डन द्वारा स्वामी जी ने अपने

सिद्धान्तों को बौद्ध मत से नितान्त विलग करके दिखलाया है फिर वे प्रच्छन्न बौद्ध कैसे माने जा सकते हैं। स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्र भाष्य में स्पष्ट लिखा है।

"ब्रह्म ज्ञान के विषय में धर्म जिज्ञासा की नाईं केवल श्रुति ही प्रमाण नहीं है किन्तु श्रुति और अनुभवादिक भी यहां पर ब्रह्मजिज्ञासा में यथा सम्भव प्रमाण हैं।"

तैत्तरीय उपनिषद् की ब्रह्मान्ड वल्ली में भी वे लिखते हैं-

"अतीन्द्रिय विषयों में हमारे ज्ञान का एक मात्र द्वार श्रुति है"

अतएव श्रुति और तदनुकूल तर्क इन दोनों का प्रामान्य स्वामी जी ने ग्रहण किया है। प्रश्नोपनिषद् की टीका में स्वामी जी यह भी लिखते हैं।

"वेद के सूत्रों का तात्पर्य वस्तुस्थिति को पलटने का नहीं है किन्तु उनको ठीक वैसी ही दिखलाना है जैसी कि वे हैं"

अतएव जो ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है सो श्रुति ही में निर्दिष्ट विधियों द्वारा अपना कल्याण करने में समर्थ होता है न कि केवल तर्क शक्ति से। अतीन्द्रिय विषयों में तो तर्क शक्ति का प्रवेश ही नहीं।

स्वामी शङ्कराचार्य जी का मत है कि संसार में जो कुछ ज्ञान है सो सब आत्मा वा ब्रह्म के द्वारा है। यह आत्मा नित्य शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी, अजर, अमर है। इसकी सत्ता तो सब किसी को प्रत्यक्ष ही है। प्रत्येक प्राणी जिसके द्वारा समझता है कि मैं हूं वही आत्मा है। यदि आत्मा न होती तो सब लोग समझते कि मैं नहीं हूं क्योंकि यह बात अनुभव के विरुद्ध है अतएव यह सिद्ध हुआ कि आत्मा है और सभी

ज्ञानों का मूलकारण भी वही है। इसी आत्मा के कारण प्रत्येक प्राणी संसार के पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करता है।

प्रत्यक्ष वा अनुमान, प्रकट वा परोक्ष भूत, भविष्य अथवा वर्तमान सब के ज्ञान का कारण यही आत्मा वा ब्रह्म है। आत्मा प्रत्येक पदार्थ को ज्ञेय और अपने को उनका ज्ञाता समझने की शक्ति रखता है। यदि कोई मनुष्य किसी कार्य विशेष में इतना मग्न हो जावे कि वह थोड़े क्षण के लिये अपने को भूल भी जावे जैसे पुस्तक पढ़ने में किसी का मन ऐसा लीन हो जावे कि वह थोड़े समय के लिये मैं ही पढ़ने वाला हूं इस बात को भूल जावे और पीछे से स्मरण करे कि मैं ही इस पुस्तक का पढ़ने वाला था तो वास्तव में वह अपने पूर्व के अनुभव ही का स्मरण करता है। स्मरण बिना पूर्व के अनुभव के हो नहीं सकता इस कारण जिस क्षण में पुस्तक पढ़ने में मग्न पुरुष अपने को भूला सा रहता है उस क्षण में वास्तव में पुस्तक का पढ़ने वाला भी वही है। इस सिद्धान्त के विरुद्ध यह बात कि मैं इस पुस्तक का पढ़ने वाला नहीं हूँ न केवल ध्यान ही में नहीं बैठ सकती किन्तु प्रत्यक्ष के विरुद्ध भी पड़ती है। इस रीति से यह निर्णय हुआ कि आत्मा ही सब ज्ञानों का आश्रय है।

इस संसार में कोई भी पदार्थ ज्ञेय होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कदाचित् कोई कहे कि शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पदार्थों मे सदा से उपस्थित हैं चाहे कोई सुनने, छूने, देखने, चखने और सूँघने वाला हो अथवा नहीं। स्वामी शङ्कराचार्य जी का उत्तर है कि बिना ज्ञाता के कोई भी ज्ञेय विषय नहीं है। उनका तो यह कथन है कि जिस पदार्थ का

कोई ज्ञाता ही नहीं है वास्तव में उस पदार्थ की सत्ता ही नहीं है और प्रत्येक पदार्थ का ज्ञाता भी आत्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं है अतएव संसार के सभी पदार्थ आत्मा ही के द्वारा ज्ञेय हैं आत्मा ही के द्वारा उनकी सत्ता भी है और आत्मा के ज्ञान से भिन्न उनकी कोई सत्ता नहीं। आत्मा के ज्ञान से भिन्न न हम किसी पदार्थ को जान सकते हैं न उसका कुछ विचार अथवा विश्वास ही कर सकते हैं। यदि कोई कहे कि कुछ ऐसे सत्ता विशिष्ट पदार्थ भी हैं कि जिनका ज्ञान ही नहीं हो सकता तो इस कथन का तात्पर्य यह निकलता है कि कोई पदार्थ देख तो पड़ता है परन्तु देखने वाली आँखें नहीं हैं। जैसे बिना आँखों के देख पड़ना असम्भव है वैसे ही बिना आत्मा से जाने गये किसी पदार्थ का ज्ञेय होना असम्भव है।

उक्त बातों से मनुष्य के चित्त में यह भी ख्याल उत्पन्न होता है कि चेतन आत्मा और जड़ प्रकृति ये दो पदार्थ संसार में सदा से उपस्थित हैं। चेतन आत्मा तो है ज्ञाता और जड़ प्रकृति है ज्ञेय परन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं, यह माया का जंजाल है जिसके द्वारा हमको मिथ्या पदार्थ भी सत्य ही के सरीखे प्रतीयमान होते हैं वास्तव में चेतन आत्मा को छोड़ शेष कोई भी ज्ञेय पदार्थ सत्य नहीं है यद्यपि वह सत्यवत् आपाततः प्रतिभासित तो अवश्य होता है। शङ्कराचार्य जी का कथन है कि आत्मा ज्ञानात्मक है अर्थात् ज्ञान आत्मा से भिन्न कुछ नहीं है अतएव ज्ञेय पदार्थ भी कि जिसकी सत्ता आत्मा की सत्ता मात्र पर निर्भर है आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं है। आत्मा ज्ञाता और प्रकृति ज्ञेय का भेद केवल व्याव-

हारिक है और अविद्या अथवा माया जनित है तथा यथार्थ ज्ञान से निवृत भी होने योग्य है।

ध्यान रखना चाहिये कि देश के द्वारा आत्मा का विभाग नहीं हो सकता है। लोग भिन्न २ पदार्थोंको देश भेद से भिन्नभिन्न अवश्य कहते हैं मानो देखने वाली आँखें शरीर रूप किसी एक देश में हैं और दिखाई देने वाला वृक्ष उससे विलग किसी अन्य स्थान पर है। परन्तु यह भेद केवल कल्पना मूलक है। आत्मा सर्वव्यापी है किसी शरीर में वह बद्ध नहीं है केवल उपाधि के भेद से किसी शरीर में वर्तमान जीवात्मा का व्यावहारिक ज्ञान कल्पित रहा करता है। जो मनुष्य कि ज्ञाता और ज्ञेय में भेद स्वीकार करता है उसी का ज्ञान माया रूप आवरण से ढका है। वही शरीर रूप देश विशेष में आत्मा के सत्ता की भ्रान्ति से उसे सीमाबद्ध ही समझता है। सचमुच में तो आत्मा सर्वव्यापी होने के कारण जैसे एक शरीर में है वैसे ही सर्वत्र है। जैसे कि घट का परिमित आकाश महाकाश से भिन्न नहीं है वैसे ही सर्वव्यापी आत्मा अथवा ब्रह्म जीवात्मा से भिन्न नहीं है अर्थात् दैशिक भेद से आत्मा का विभाग नहीं हो सकता है।

उक्त प्रकार से यदि आत्मा सर्वव्यापी और सब ज्ञानों का आश्रय मान लिया गया है तो उसे सर्वज्ञ भी होना चाहिये परन्तु देखने में तो ऐसा आता है कि आत्मा सर्वज्ञ न होके केवल अल्पज्ञ है। यथा कल हमने घर के द्वार पर जिस एक कुत्ते को खड़े देखा था वह कुत्ता सर्वदा हमारी आंखों के सामने न तो पहिले खड़ा था और न आगे खड़ा होता जान

पड़ता है। ऐसी दशा में आत्मा को सर्वज्ञ कैसे मान लेवें? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी शङ्कराचार्य जी कहते हैं कि आत्मा तो सर्वज्ञ है उसका तो ज्ञान इन्द्रिय जन्य ज्ञानों से भी परे है। किसी वस्तु को देखना और भूल जाना तो इन्द्रिय जन्य ज्ञानों का धर्म है परन्तु आत्मा का ज्ञान इन्द्रिय जन्य ज्ञानों की नाईं उत्पत्ति और विनाश शील नहीं है। आत्मा का ज्ञान अविनाशी है यदि ऐसा न होता तो क्यों भिन्न २ स्थान, काल अवस्थादि के प्रत्यक्ष विषयों को जीव स्मरण करता। निदान आत्मा के ज्ञान वाह्य और आभ्यन्तर की रीति से दो प्रकार के होते हैं। वाह्येन्द्रिय से जायमान ज्ञान विनाशी और वाह्य हैं तथा अन्तःकरण में रहने वाले ज्ञान नित्य अविनाशी तथा आभ्यन्तर हैं। पूर्व के अनुभव का स्मरण और प्रत्यभिज्ञा आत्मा की जिस शक्ति के द्वारा होते हैं वे आभ्यन्तर ज्ञान को नित्य और भून भविष्य वर्त्तमानादि से अवाधित रखते हैं। आत्मा सर्वव्यापी है और उसका ज्ञान नित्य होता है।

निदान प्रत्येक ज्ञान का कारण आत्मा ही है वही सब कुछ है और तो कुछ है ही नहीं। जो कुछ वाह्य संसार उस आत्मा से भिन्न रूप में दिखाई देता है और देश तथा काल इत्यादि से अवच्छिन्न जान पड़ता है वास्तव मे व्यावहारिक अथवा प्रातिभासिक मात्र है पारमार्थिक (सत्यताविशिष्ट) सत्ता तो केवल आत्मा ही की है। जब आत्मा से भिन्न किसी पदार्थ की सत्ता ही नहीं तब कर्ता, कर्म देश कालादि सभी व्यवहारों की प्रतीति मिथ्या ही सिद्ध होती है। क्रियाओं के कारण भी जो पदार्थों में परस्पर भेद देख पड़ता है सो भी अविद्या अथवा माया ही के कारण है। जाना और

आना गया है कि किसी देश विशेष का किसी समय विशेष से सम्बन्ध मात्र की प्रतीति परन्तु दैशिक वा कालिक सम्बन्ध भी मिथ्या है और आत्मा को किसी विशेष शरीर में स्थित कल्पना करने से दैशिक वा कालिक सम्बन्ध की प्रतीति होती है। यहां और वहां ये ही शब्द दैशिक प्रतीति के कारण है किन्तु सर्वव्यापी आत्मा में तो दैशिक सम्बन्ध के प्रसर का अवसर ही नहीं क्योंकि कोई देश ही ऐसा नहीं है जहां पर कि सर्वव्यापी आत्मा नहीं है इसी कारण आत्मा के सम्बन्ध में यहां वहां का भेद दर्शन भ्रान्तिमूलक है। इसी प्रकार अब और तब इत्यादि भिन्न २ समयों के द्योतक शब्दों का व्यवहार भी आत्मा को अनित्य कल्पित करने ही से होता है। परन्तु आत्मा नित्य होने के कारण किसी समय विशेष से वास्तविक सम्बन्ध रखने वाला नहीं है। दैशिक सम्बन्ध कल्पना की नाईं कालिक सम्बन्ध कल्पना को भी भ्रान्त समझ के आत्मा को सर्वव्यापी और नित्य स्वीकार करना चाहिये।

उक्तरीति से संसार के सभी व्यवहारों की अविद्या के कारण सत्यवत् प्रतीति होती है ऐसा स्वीकार करने से देश, काल, कर्त्ता, कर्म, ज्ञाता, ज्ञेय आदि के भेद भी मिथ्या सिद्ध होते हैं और सत्य तो केवल एक आत्मा मात्र सिद्ध स्वीकार किया जाता है जिसमें किसी प्रकार के भेद की स्थिति कदापि किसी अवस्था में भी स्वीकार नहीं की जाती। यह आत्मा, सत्य, ज्ञान, आनन्द स्वरूप और अनन्त भी है। यह सत्यतादि आत्मा के गुण मात्र न समझे जावें परन्तु यों ध्यान किया जावे कि ये ही आत्मा के स्वरूप अर्थात् मुख्य तत्व हैं। इनसे भिन्न आत्मा कुछ है ही नहीं और न ये आत्मा से भिन्न कोई पदार्था-

तन्त्र हैं। इस रीति से स्वामी शङ्कराचार्य जी अद्वैतब्रह्म वा आत्मा रूप एक अखन्ड चैतन्य की सत्ता को स्वीकार करते हैं।

आत्मा वा ब्रह्म को छोड़ संसार में और कोई भी सत्य नहीं है ऐसी प्रतीति न होने और संसार के सत्यवत् प्रतीति होने तथा सादि सान्त वस्तुओं के ज्ञान का कारण वास्तव में अविद्या अथवा माया है। यह अविद्या अथवा माया अनिर्वचनीय है। जीवों के अदृष्ट की नाईं अविद्या वा माया का भी जीव से सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। उसी सम्बन्ध के कारण जीव में अल्पज्ञता, सादित्व, और सान्तत्व आदि गुण विद्यमान से प्रतीति होते हैं। अविद्या वा माया का सम्बन्ध अनादि होते हुये भी सान्त है और यथार्थ ज्ञान प्राप्ति से निवर्त्य है।

अब यहां पर यह प्रश्न उदय होता है कि इस संसार की ऐसी मिथ्या प्रतीति अविद्या ही के कारण सही उत्पन्न होती है सो कैसे? विना चेतन के सम्बन्ध के जड़ अविद्या तो संसार को उत्पन्न कर्त्री हो ही नहीं सकती। इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी शङ्कराचार्य जी का कथन है कि माया शवल अर्थात् माया शक्ति से युक्त ब्रह्म ही इस परिदृश्यमान जगत् का न केवल उत्पन्न कर्त्ता वा रचयिता किन्तु पालयिता और संहर्त्ता भी है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायी, पवित्र और जीवों का संरक्षक भी है। यही माया शवल ब्रह्म सगुण ब्रह्म अथवा ईश्वर के नाम से जगत् में प्रसिद्ध है। माया शवल ब्रह्म ही सत्व, रजस् और तमस इन तीनों गुणों की उपाधि के कारण सगुण ब्रह्म अर्थात् ईश्वर बन के सब संसार के मिथ्या व्यवहारों का भी परिचालक है। बौद्धादि नास्तिक और सांख्यादि जड़ प्रकृति को संसार का आदि कारण

मानते हैं उन को शङ्कर स्वामी इस सगुण ब्रह्म वा ईश्वर की सत्ता न मानने के कारण दोष देके उनके मत को असुद्ध सिद्ध करते हैं। व्यवहारिक संसार में ईश्वर कारण वादी की सभी बातें सगुण ब्रह्म के सम्बन्ध में शङ्कर को भी स्वीकृत हैं। यह ब्रह्म संसार का स्वामी है और देव, राक्षस मनुष्य और पशुओं के जीवनादि का पूर्णरीति से अधिकारी तथा प्रबन्ध कर्ता है। वास्तव में ये सब सगुण ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं परन्तु माया की उपाधि से उपहित (ढके) होने के कारण भिन्न तथा अनेक रूप वाले प्रतीत होते हैं। इस उपाधि के कारण जीवात्मा के शरीर के पांच भिन्न २ कोश भी लक्षित होते हैं जिनके नाम (१) अन्नमय (२) प्राणमय (३) मनोमय (४) विज्ञानमय और (५) आनन्दमय कोश हैं। जैसे कि म्यान में तलवार छिपी रहती है वैसे ही इन कोशों में आत्मा गुप्त रहता है अतएव इन उपाधियों का नाम कोश रक्खा गया है। जब कि यथार्थ ज्ञान के द्वारा इन उपाधि जनित भेदों का ज्ञान मिथ्या ज्ञान होता है तभी जीव मुक्त हो जाता है और जब तक इस उपाधि का ज्ञान अमिथ्यावत् प्रतीत होता है तब तक जीव बद्ध रहता है। ज्ञान का माहात्म्य ही यही है कि उपाधि को मिथ्या सिद्ध करके नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, कूटस्थ और चेतन स्वभाव आत्मा को अपनी नित्यता और शुद्धि का बोध कराके मुक्ति दिला देवे। संसार में पड़ा अविद्या अथवा माया से उपहित जो जीवात्मा माया के बन्धन में फँसा है सो इस बन्धन से छूट के मुक्त हो जाता है।

संसार में मुक्त प्राणी का बारंबार जन्म और मरण नहीं

होता है। ईश्वर भी मुक्त है परन्तु जीवों को ज्ञानमार्ग दिखाने और उनके दु:खों को निवारण करने के लिये मुक्त ईश्वर (सगुणब्रह्म) को भी कभी २ मायिक शरीर धारण करके कौशल्या पुत्र वा देवकी पुत्र आदि के रूप में अवतार लेना पड़ता है। साधारण जीवात्मा और सगुणब्रह्म में क्रिया सम्बन्धी सभी व्यवहार। साधारण रहते हुए भी इतना भेद अवश्य है कि जीव का जन्म मरण उनके पूर्वकृत कर्मानुसार हुआ करता है परन्तु ईश्वर के आप्त काम होने के कारण उनका जन्म मरण किसी कर्म के बन्धन द्वारा नहीं होता है किन्तु ऐच्छिक है। कर्म के बन्धन में फंसे हुए जीवों के भी उद्धार के लिये ईश्वर इतर जीवों के नाईं संसार में जन्म लेता है और इसी जन्म को लोग अवतार मानते हैं।

स्वामी शंकराचार्य जी का सिद्धान्त है कि मनुष्य (जीव) की चार प्रकार की दशाएं होती हैं। एक तो जिस अवस्था में उसको अपनी आत्मा की नित्यता वा ईश्वर आदि पदार्थ का ज्ञान ही नहीं होता है वह केवल प्रयोजनानुसार अपने स्वार्थ का साधन करके प्राणी अज्ञान में अपना जीवन व्यतीत करता है। पुण्यादि कार्यों का कुछ ज्ञान न होने से इस जीवन की समाप्ति के अनन्तर जीव नीच पशु पक्षी आदि की योनियों में प्रवेश करता है।

द्वितीय दशा वह है कि जीव जब श्रुति और स्मृत्यादि में कहे हुए कर्मों को यथार्थ रीति से करता है परन्तु अपने आराध्यदेव और ईश्वरादि का यथार्थ ज्ञान उसे नहीं रहता है ऐसी दशा में वह अपने कृत पुण्यों के द्वारा पितृयान नाम मार्ग से चन्द्रलोक में जा पहुंचता है और जब उसके पुण्यों का

फल भोग समाप्त हो जाता है तब वह फिर संसार में जन्म लेकर अपने कर्म के बन्धनों में फंसता है।

तृतीय अवस्था वह है जिसमें प्राणी वेदादि से विहित कर्मों को करता जाता है और अपने आराध्यदेव सगुण ब्रह्म को पहिचान के उसकी भक्ति करता है। यह जीव संसार में अपने कर्मों को निबाह के मृत्यु के पीछे देवयान के द्वारा ब्रह्मलोक में पहुंचता है और संसार के जन्म मरण से रहित हो जाता है तथा सगुण ब्रह्म का सालोक्य पा लेता है और कल्पान्त में सगुण ब्रह्म समेत वह जीव भी निर्गुण ब्रह्म में लीन हो के मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

इन तीनों अवस्थाओं के अतिरिक्त क्रम मुक्ति को छोड़ एक परामुक्ति भी जीव के पक्ष में होती है सो इस प्रकार से कि जन्म जन्मान्तर में वेद विहित कर्मों के अनुष्ठान द्वारा जीव अपने चित्त को शुद्ध करके तब ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होता है। शास्त्रों के सम्यगालोचन और गुरुओं के उपदेश से उसे संसार मिथ्या प्रतीत होने लगता है और एक ही आत्मा वा ब्रह्म की सत्यता के यथार्थ ज्ञान से उसकी मुक्ति शरीर रहते दशा में ही हो जाती है वह जीवनमुक्त कहाता है। जीवनमुक्त ज्ञानी के लिये कर्म का बन्धन नहीं रह जाता है। लोगों की शिक्षा के लिये चाहे वह आदर्श कर्म वेद विहित होने के कारण अनुष्ठान योग्य करके भले ही दिखावे पर उसके निज के लाभ के लिये उसे कर्म की कुछ भी आवश्यकता नहीं रह जाती है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त किये हुए जीवनमुक्त के कर्म फिर उसके लिये फलदायक न होने के कारण निरर्थक हैं। हाँ लोक संग्रह अर्थात् इतर जीवों के उपदेशार्थ भले राजा जनक

अथवा भगवान् श्रीकृष्ण आदि मुक्त हो करके भी गृहस्थी का निर्वाह साधारण अज्ञानी जन की नाईं करते देख पड़े हैं ऐसे लोगों के लिये उनके किये कर्म बन्धन स्वरूप नहीं है शास्त्र में ऐसे कर्मों की संज्ञा निष्काम कर्म कही गई है। निष्काम कर्म करने वाले के कार्य उसके यथार्थ ज्ञानी होने के कारण बन्धन स्वरूप नहीं होते हैं। निष्काम कर्म से तात्पर्य उस कर्म से है कि जिसको "मैं इस कार्य का करने वाला हूं" ऐसा अहङ्कार विशिष्ट होके कर्त्ता न करे और न फल प्राप्ति की ओर स्पृहा रक्खे। जीवन्मुक्तों के कार्य इसी निष्काम कर्म कोटि के भीतर परिगणित होते हैं।

मनुष्य को अपने जीवन में सगुण ब्रह्म वा ईश्वर की भक्ति करना भी परमावश्यक है क्योंकि शास्त्रों में इसके अनुष्ठान का वर्णन विशेष रीति से किया गया है। जब तक जीव शरीरधारी होके संसार में उपस्थित है तब तक संसार का अनेकता का ज्ञान वा द्वैत भाव उसके चित्त में बना ही रहेगा और तब तक उसे आराध्य ईश्वर, उसकी विभूति और अपने आराधक होने का ज्ञान बना रहेगा अर्थात् भक्ति के साथ द्वैत ज्ञान भी सदा सम्मिलित है और भक्ति की अत्यन्त उत्कृष्ट दशा भी यथार्थ ज्ञानी की जीवन्मुक्त दशा से नीची ही है। भक्त चार प्रकार के होते हैं—एक तो आर्त्त जो सांसारिक पीड़ा के फन्दे में पड़ के अपने छुटकारे के लिये भगवद्भक्ति करता है।

दूसरे जिज्ञासु जो भगवान् के यथार्थ स्वरूप के पहिचानने में प्रयत्न शील हैं और साधन तथा भक्ति द्वारा तत्प्राप्ति की ओर लगे हुए हैं अभी इन्हें सिद्ध भक्त की अवस्था प्राप्त नहीं हुई है।

तीसरे वह है जो किसी साँसारिक अर्थ सिद्धि के लिये

भगवान् की उपासना करता है वह भी यथार्थ ज्ञानी न होने के कारण मुक्त वा अत्युच्च कोटि का सिद्ध भक्त नहीं कहा जा सकता है।

हाँ चौथा भक्त वह है जो ज्ञानी है। केवल ईश्वर वा सगुण ब्रह्म ही से नहीं किन्तु निर्गुण ब्रह्म से भी अपने को जो अभिन्न समझ चुका है। यही उच्च कोटि का सिद्ध भगवद्भक्त है और यही भक्त भगवान् को विशेष प्रिय भी है।

स्वामी शंकराचार्य जी के मत में चौथे प्रकार का भक्त किसी अंश में यथार्थ ब्रह्म ज्ञान विशिष्ट मुक्त जीव से न्यून नहीं है।

शङ्कराचार्य जी का सिद्धान्त है कि श्रुति विहित कर्म के सम्यगनुष्ठान द्वारा प्रत्येक प्राणी का चित्त शुद्ध हो जाता है और तब वह साधन चतुष्टय सम्पन्न होके मोक्ष प्राप्ति अथवा यथार्थ ज्ञान का अधिकारी बन जाता है। यह साधन चतुष्टय निम्न लिखित हैं—

प्रथम—नित्यानित्य वस्तु विवेक—अर्थात् नित्य (अविनाशी) और अनित्य (विनाशी) वस्तुओं का विवेक अर्थात् यथोचित रीति से उनके भेद का अवधारण।

द्वितीय—इहामुत्रफल भोगविराग—अर्थात् इस दृश्यमान संसार में तथा स्वर्गादि परलोक में भी अपने किये सत्कर्मों के फल भोग की लालसा का परित्याग।

तृतीय—शमदमादि साधन सम्पत्ति—अर्थात्

(१) शम—मन रूप अन्तरिन्द्रिय का दमन—भाव यह है कि संसार के सुखद पदार्थ स्रक, चन्दन, वनितादि

के भोग की ओर से मन को खींच के विषयों से विलग रहना ।

(२) दम—अर्थात् बाह्येन्द्रियों को आकर्षक पदार्थों की ओर से हटाना अथवा सुन्दरी स्त्री, स्वादु अन्न, मनोहर गीत आदि की ओर आँख, जीभ, कान आदि को न जाने देना ।

(३) उपरति—ज्ञान पिपासा के कारण शास्त्रादि में विहित कर्मों से फलासा परित्याग के कारण विश्राम ।

(४) तितिक्षा— शीतोष्ण, सुख दुःखादि द्वन्द्वों का सह लेना उनको सुखप्रद देख उनमें आसक्त न होना और उनको दुःख प्रद मान उनसे ऊब के उनका परित्याग न करना ।

(५) श्रद्धा—शास्त्र तथा गुरु के बचनों पर आस्तिक्य बुद्धि अर्थात् विश्वास । बिना इस साधन के भी जीव का यथार्थ में मोक्ष प्राप्ति का साधक होना निरर्थक ही है।

(६) समाधान—निद्रा आलस्य आदि को छोड़ के चित्त का एकाग्र करना (चित्त चाञ्चल्य का परित्याग) ।

चतुर्थ-मुमुक्षत्व- अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की एकान्त इच्छा ।

भगवत्पाद स्वामी शङ्कराचार्य जी के जो सब सिद्धान्त ऊपर संक्षेप रीतिसे दिखाये गये हैं उन्हें ध्यान पूर्वक पढ़ने से स्पष्टतया विदित हो जावेगा कि इनका सिद्धान्त इनकी असाधारण विद्वत्ता को प्रकट करता है और कदाचित् ही कोई दूसरा पुरुष ज्ञान की इस उच्च कोटि तक पहुंचा होगा ।

विशद रूप से शङ्कराचार्य जी के सिद्धान्तों का वर्णन

करना तो किसी एक परम योग्य और विद्वान् व्यक्ति का कार्य है। मुझसे तो अपनी क्षुद्र बुद्धि से जैसा कुछ हो सका ऊपर संक्षेप में दिखा दिया है। इसमें भूलों का होना तो अवश्य ही सम्भव है परन्तु आशा है कि विद्वज्जन अपनी स्वाभाविक महानुभावता से भूल आदि को क्षमा करेंगे।

जिससे जगत् की उत्पत्ति होती है जिसके प्रभाव से जगत् ठहरा है और जिसमें यह जगत् लीन होता है वही परब्रह्म है। वही संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण है। वही सत्य, नित्य और मुक्त है। वह सत् स्वरूप, ज्ञान स्वरूप और आनन्द स्वरूप है। ब्रह्म से अतिरिक्त किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। वह सत्य है तद्भिन्न सभी मिथ्या है। अँधेरे में एकाएक रस्सी देखने से जैसे उसपर सर्पका भ्रम उत्पन्न होता है उसी प्रकार सत्स्वरूप परब्रह्म रूप अधिष्ठान (आधार) पर अज्ञान अन्धकार से मूढ़ प्राणी को जगत् की प्रतीति रूप भ्रान्ति होती है और जिस प्रकार सर्पभ्रम दूर होने पर केवल रस्सी का बोध रह जाता है उसी प्रकार तत्वज्ञान के प्रभाव से संसार का भ्रम निवृत्त होकर ब्रह्मज्ञान शेष रहता है। जगत् में ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं है। वही एक अद्वितीय और वही अद्वैत है।

अविनाशी परब्रह्म से मायाशक्ति के योग वश जगत् की उत्पत्ति होती है। वह ब्रह्म स्वयं निर्गुण, निर्विशेष, निराकार, निर्विकार, नित्यमुक्त, और चिन्मय स्वरूप है, वह नयन वचन और मन से भी परे है।

जीवात्मा केवल परमात्मा का अंश है। जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है। जीव और ब्रह्म में अभेद ज्ञान उत्पन्न होने पर

ब्रह्म में भेद बुद्धि नहीं रह जाती। यही तत्वज्ञान होने से जीवात्मा की मुक्ति होती है।

श्रीयुत त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य एम० ए० महाशय ने स्वरचित ऐतिहासिक प्रबन्ध माला के प्रथम भाग में श्री शङ्कराचार्य विरचित ग्रन्थों की निम्नलिखित नामावली दी है।

दश उपनिषद, श्वेताश्वतरोपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद् और नृसिंहतापनी इन उपनिषदों तथा श्रीमद्भगवद्गीता, सनत्सुजातीय, विष्णुसहस्रनाम, गौड़पाद कारिका और हस्तामलक इन ग्रन्थों पर भाष्य शङ्कराचार्य जी ने रचना किया है। इनके अतिरिक्त वज्रसूची, त्रिपुरी उपनिषद् भी इनकी रची है। पद्मपुष्पाञ्जलि स्तोत्र, हरिमीड़ेस्तोत्र, दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, स्वरूपानुसन्धान स्तोत्र, चिदानन्द स्तवराज, गोविन्दाष्टक, मानसिक पूजन, आनन्दलहरी, सौन्दर्यलहरी, षट्पदी इतने स्तोत्र भी इनके बनाये हैं।

वाक्सुधा, व्याख्यासुधा, प्रबोधसुधाकर, आत्मबोध, ब्रह्मज्ञान बालबोधिनी, अज्ञानबोधिनी, आत्मज्ञानोपदेश विधि, आत्मविद्योपदेश विधि, साधन पञ्चक, मनीषा पञ्चक, कौपीन पञ्चक, शिक्षापंचक, अवधूतषट्क, विज्ञाननवक, पञ्चीकरण प्रक्रिया, प्रक्रिया निरूपण, द्वादशमहासिद्धान्त निरूपण, स्वात्मनिरूपण प्रकरण, सदाचार प्रकरण, स्वरूपनिर्णय, मोहमुद्गर, महावाक्यसिद्धान्त, आत्मानात्मविवेक, विवेकचूड़ामणि, स्वात्मानन्दप्रकाशिका, वेदान्तदीपिका, संन्यासधर्म पद्धति, वाक्यवृत्ति, दश श्लोकी, उपदेश साहस्री, योगतारावलि, वेदान्तसार विज्ञान नौका, प्रश्नोत्तरमाला, अपरोक्षानुभूति और तत्वसार इत्यादि और कितने ग्रन्थों की रचना भी स्वामी शङ्कराचार्य

जी ने की है। इन ग्रन्थों पर भी कितने भाष्य और टीका टिप्पणियाँ लिखी गई हैं उनका तो लेखा भी लगाना कठिन है।

इन छोटे मोटे ग्रन्थों के अतिरिक्त व्यास जी कृत वेदान्त सूत्रों पर भाष्य अर्थात् ब्रह्मसूत्र भाष्य वा शारीरिक भाष्य भी स्वामी शङ्कराचार्य विरचित अनुपम ग्रन्थ है जिसका उल्लेख ऊपर कई बार आ चुका है। इसकी कई एक टीकाएं हैं जिन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। *

उक्त सब बातों को भली भाँति देखने और सोचने तथा समझने से शङ्कराचार्य जी एक असाधारण व्यक्ति विदित होते हैं और इसमें सन्देह नहीं कि ये कलियुग समय के एक पवित्र चित्त, महातपस्वी, तेजस्वी, विद्या और कतिपय गुणगणों के निधान महर्षि थे। इन्होंने संसार में जन्म लेके केवल अपना ही उद्धार नहीं किया किन्तु संसार भर के लिये उद्धार का एक अनुपम मार्ग दिखलादिया। धन्य वह भारतभूमि है जिसने ऐसे महापुरुष को उत्पन्न किया।

॥ इति ॥

* शङ्कराचार्य विरचित ब्रह्मसूत्र भाष्य को मेरे पूज्यपाद पिता पण्डित सरयू प्रसाद जी मिश्र ने मुझे पढ़ाया था उन्हीं के बताये सिद्धान्तों को मैंने इस पुस्तक में संक्षेप रीति से लिखा है। लेखक

मुद्रक—काव्यतीर्थ पं० विश्वम्भरनाथ वाजपेयी, ओंकार प्रेस, प्रयाग

ओंकार-

आदर्श-महिला-चरितमाला

लीजिये। बहुत से पाठक और पाठिकायें मुझसे यह शिकायत किया करते थे कि आपने ओंकार आदर्श-चरितमाला तो प्रकाशित की और उसे बड़े प्रयत्न से निकलाते जा रहे हैं। प्रत्येक मास में दो अनुपम जीवनचरित प्रकाशित होते हैं। इससे पुरुषों को तो बड़ा लाभ पहुंचाता है। बालकों को सुधारने के लिये एक अच्छा साधन हो गया है परन्तु कन्याओं और स्त्रियों के लिये कोई ऐसी आदर्श चरितमाला नहीं, जो उन्हें लाभ पहुंचावे। मुझे भी उनकी बात ठीक ही मालूम पड़ी। यह सोचकर मैंने ओंकार प्रेस से स्त्रियों के लिये भी "ओंकार आदर्श महिला-चरित माला" निकालना आरम्भ कर दिया है। इस चरित-माला की ४ पुस्तकें (१) महारानी सीता (२) महारानी पद्मावती (३) महारानी शैब्या और (४) महारानी दमयन्ती प्रकाशित भी हो चुकीं; प्रत्येक मास में एक नारी रत्न का जीवन चरित निकाला जायगा ॥) आठ आना पेशगी आने पर ग्राहकों में नाम लिख लिया जायगा। प्रत्येक मास में एक जीवन चरित भेजा जायगा। समय पर पुस्तक मिल जाया करेगी। प्रत्येक पुस्तक में सौ या सौ से अधिक पृष्ठ होंगे। कागज़ भी बहुत उत्तम लगाया जाता है।

पता:-मैनेजर, ओंकार बुकडिपो,

प्रयाग।